(151) समिति पत्रिका मार्च 1972
8226
3942

दानवीर जगदेव पंवार

—अगरचन्द नाहटा M0-151

[राजस्थान तथा गुजरात का सम्बन्ध केवल पड़ोस के कारण ही नहीं है; बल्कि दोनों के सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजकीय सम्बन्ध भी प्राचीनकाल से ही बड़े ही आह्लादक रहे हैं। राजस्थान तथा गुजरात की ऐतिहासिक एकता की झाँकी इस शोध-कहानी में द्रष्टव्य है। – सं०]

'जगदेव पंवार एक ऐतिहासिक व्यक्ति था, इसका उल्लेख गुजराती ग्रन्थों में भी पाया जाता है। वह जैन के सिद्धराज जयसिंह का स्वामीभक्त सेवक था और उसने उसी की दीर्घायु के लिए अपना मस्तक देवी को भेंट कर दिया था। अतः जगदेव का समय १२ वीं शती निश्चित होता है। ख्यात के अतिरिक्त जगदेव पंवार की बात भी राजस्थानी साहित्य में पाई जाती है और "ख्यात जगदेव केसली का"! भी राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है। यहाँ जगदेव पंवार की बात का सारांश दिया जा रहा है।

मालवे के सुप्रसिद्ध धारानगरी के राजा पंवार उदयादित्य की दो रानियाँ थीं। पटरानी चांपेली जिससे दिशधवल कुमार का जन्म हुआ; राजा को बड़ी प्रिय थी। दूसरी रानी सोलंकी से जगदेव जन्मा। किसी कारण वश जगदेव की माता से राजा का मन अप्रसन्न रहता था। कुमार जगदेव सांवला होने पर भी बड़ा तेजस्वी और बलवान था। राजा उदयादित्य उसे बड़ा होनहार समझकर बहुत प्रेम किया करते थे, परन्तु पटरानी चांपेली जगदेव से द्वेष करती थी। इसी कारण उसे पिता का राज्य छोड़कर गुर्जरेश्वर सिद्धराज जयसिंह की सेवा में जाना पड़ा। जगदेव का विवाह दौसा के राजा इन्द्रचामड़ की पुत्री और कुमार मोज की बहिन वीरमती से हुआ था।

विमाता के अनादरव्यवहार से रुष्ट होकर जगदेव अपनी ससुराल जीकर, पत्नी को लेकर पाटण रवाना हो गया और रास्ते में उसने सोहड़ जाल में भयानक नाहर और नाहरी को मारकर लोगों को निर्भय बना दिया।

चावड़ी वीरमती भी बड़ी पतिव्रता और वीर क्षत्राणी थी। उसके साथ जब नौकरीके लिए जगदेव पाटण पहुँचा, और शहर में मकान ठीक करने के लिए गया तब, तालाब पर बैठी हुई चावड़ी को उसके यहाँ की वेश्या जांबवती जगदेव की फूफी होने का प्रपञ्च रचकर अपने यहाँ ले गई। उसके यहाँ शहर कोतवाल दूसरसी का पुत्र भालकुँवर आया-जाया करता था। रात में चावड़ी को उसने जगदेव बतलाकर धोखे से कमरे में प्रवेश कराके दरवाजा बन्द कर दिया। चावड़ी को जब यह प्रपंच ज्ञात हुआ तब उसके लिए अपने पवित्र पतिव्रत धर्म की रक्षा करना एक समस्या हो गई; पर उसने बुद्धिमानी और धैर्य से काम लिया। भालकुँवर को वारुणी के घोर नशे में व्याप्त कर चावड़ी ने उसका काम तमाम कर दिया और उसकी गठरी बाँध कर खिड़की से सड़क पर फेंक दिया। पहरेदार उसे माल समझकर प्रातःकाल कोतवाल के पास ले गए। पर गठड़ी को खोलते ही अपने पुत्र का शव देखकर कोतवाल के होशहवास जाते रहे। वह तत्काल जांबवती वेश्या के घर आया और चावड़ी वीरमती को पकड़ने के लिए खिड़की की राह से सिपाहियों को चढ़ाया। वहाँ जो भी व्यक्ति जाकर माथा डालता, तो चावड़ी एक झटके से उसका काम तमाम कर देती। इस प्रकार पाँच आदमियों को मारने पर कोई भी उसके पास नहीं फटका और यह खबर महाराजा सिद्धराज जयसिंह के कानों तक पहुँची। महाराजा स्वयं घटनास्थल पर पहुँचे, साथ में जगदेव भी हो गया। महाराज ने चावड़ी से परिचय प्राप्त कर जगदेव से मिलाया। स्वयं चावड़ी को धर्मपुत्री कहकर धैर्य दिलाया और दास-दासियों के साथ एक सामग्रीपूर्ण मकान में

[illegible] दिया। महाराज ने [illegible] पर प्रसन्न हो वेश्या के [illegible] दिए। इन्होंने जगदेव को बड़े सम्मान के साथ दरबार में रखा और प्रतिदिन दो हजार रुपया वेतन पर दिया।

जगदेव बड़े मौज से दान-पुण्य करता हुआ पाटण में रहने लगा। सुमेरेश्वर के सामंत कर्मचारी जगदेव से मन ही मन ईर्ष्या रखते, क्योंकि राजा उसे बड़ा सम्मान देता और साठ हजार मासिक वेतन भी। उसे पाटण में [illegible] रहते छः वर्ष हो गए। इस समय जगदेव के पुत्र भी थे; जिनमें बड़ा जगपाल और छोटे का नाम चंडपाल था।

एक बार आधी रात को नेतृ-अधिकारी अर्द्ध रात्रि में महाराज की औरतों के गाने और रोने का शब्द सुनाई दिया। महाराज ने जगदेव से कहा, "औरतें जहाँ रोती और गाती हैं, वहाँ तुम जाकर इसका कारण ज्ञात करो।" जगदेव तत्काल उठकर रवाना हुआ। दूसरे उमरावों, पहरेदारों को भी राजा ने आज्ञा दी, तो वे परस्पर एक दूसरे को आँख की कहकर चले गए। कुछ उमरावों ने कहा कि जगदेव बिरकाल से मुफ्त का वेतन खाता है। ऐसे समय में यही जाएगा। परीक्षार्थ राजा जगदेव के पीछे-पीछे हो गया। जगदेव सीधे से घटनास्थल पर जा पहुँचा और रोने के कारण का कारण पूछा। रंगेवाली पटना पाटण की योगिनियाँ थीं और गानेवाली दिल्ली की। कारण पूछने पर पता लगा कि कल प्रातःकाल सवा प्रहर दिन चढ़ने में [illegible] जगदेव की मृत्यु होगी। राजा के [illegible] होने का कारण पूछने पर ज्ञात हुआ कि उसके [illegible] देने पर महाराजा दीर्घायु हो सकेंगे। तो वह योगिनियों को थोड़ी देर प्रतीक्षा करने की प्रार्थना कर तत्काल अपने महल में आया और स्वामी आजड़ी से सारा वृत्तान्त कहते हुए स्वामीजी से [illegible] देने के संबंध में सलाह माँगी।

आजड़ी ने बड़ी प्रसन्नता से कहा—"जिसका नमक खाते हो।

उसके उपकार होने का यह अच्छा अवसर है। पुत्रों के साथ मैं भी आपके पीछे नहीं रहूँगी।" जगदेव अपनी प्राणप्रिया की बातों से प्रसन्न हो तत्काल दोनों पुत्रों व प्रिया के साथ योगिनियों की सेवा में आ उपस्थित हुआ और राजा की आयु चारों जीवों के भोग देने पर ४८ वर्ष बढ़ाने की प्रार्थना कर बड़े बेटे का सिर धड़ से अलग कर दिया। जब दूसरे को सम्मुख लाया गया, तब तो योगिनियों ने जगदेव के सत्य साहस पर प्रसन्न होकर उपर्युक्त ४८ वर्ष का वरदान देनेके साथ बड़े पुत्र को भी जीवित कर दिया। जगदेव सपरिवार घर लौटा और राजा भी बड़ी प्रसन्नता के साथ गुप्त वृत्तान्त देखकर महलों में लौट आया।

प्रातः काल होने से पूर्व ही राजा ने जगदेव को बुला भेजा। वह पूजा पाठ करके दरबार में आया। राजा ने स्वागत पूर्वक अपने पास ही दूसरे सिंहासन पर उसे बैठाया और दूसरे उमरावों से रात का वृत्तान्त पूछा। उन लोगों ने "कहा अमुक अमुक व्यक्ति गए थे, मुसाफिरों में एक पुत्र जन्मा और दूसरे के घर मृत्यु हुई थी। इसी से रोना और गाना हो रहा था। राजा ने कहा "अजी! आप लोग लाख-लाख के पट्टेदार हैं। आपके बिना दूसरा कौन सच्ची खबर लाता।" फिर उन्होंने जगदेव से कहा—

"आप बतलाइए रात्रि की हकीकत।" जगदेव ने कहा, "वे लोग जो कहते हैं, वही बात है।" राजा ने कहा—"मेरी कसम, सत्य बात कह दो!" जगदेव ने कहा—"मैंने कुछ विशेष देखा हो, तो कहूँ! मुझे लंबी-चौड़ी हाँकनी नहीं आती।" तब महाराजा ने सबको संबोधित कर कहा— आज मेरी तो मौत थी; इन्होंने ४८ वर्ष का राज्य मुझे दिलाया। और रात की सारी नजर-देखी बात प्रकट कर २००० गाँव, २००० घोड़े, हाथी, ११०० पालकी, २०० रथ, १,००००० रुपया प्रतिदिन के वेतन देने के साथ साथ अपनी बड़ी राजकुमारी का विवाह भी जगदेव के साथ कर दिया।

इसके ६-३ वर्ष बाद सिद्धराज जयसिंह ने अंबिकी रानी से विवाह किया। यह नवविवाहिता बड़ी सुन्दर थी। ५०० रुपयों के अतर-फुलेल से प्रतिदिन

[illegible] चौंका [illegible] आश्चर्यित होकर [illegible] भैरव [illegible] रानी के महल में आता और राजा को पलंग के नीचे दबाकर स्वयं रानी के साथ शयन करता। उसने राजा को चेतावनी दे दी कि कभी दूसरी रानी के महल में भूल जाना और न मेरी बात किसी के सामने प्रकट करना। अगर ऐसा करोगे, तो मैं सत्वाल तुम्हें मार डालूँगा। भैरव के इस अपमान से राजा दिन-दिन दुर्बल होता हुआ निस्सार-प्राय रहने लगा।

जगदेव ने राजा की हालत देखकर कारण जानने का आग्रह किया और राजा ने रात के समय छिपे रहकर देख लेने का निर्देश कर दिया। जब भैरव की करतूत जगदेव ने देखी, तब तत्काल उसने भैरव को पलंग से निराकृत कर दिया। दोनों में खूब जोरों से कुश्ती होने लगी। [illegible] रहने पर भैरव निर्बल हो गया। जगदेव ने [illegible]-प्रहार से भैरव को लहूलुहान कर दिया और उसको मुश्कें बाँधकर अपने घर के तहखाने में कैद कर दिया। जब प्रातःकाल जगदेव दरबार में गया, तब राजा ने फिर २००० गाँव उसे दिए।

इस प्रकार भैरव को गिरफ्तार हुए सात दिन बीत गए। माता चामुण्डा देवी के अन्दाजे में उसकी अनुपस्थिति रहने लगी। देवी ने उसे कई बार मना किया था कि जगदेव की उपस्थिति तुम्हें पालन मत जाना, पर वह नहीं माना और अब उसे लज्जा होकर कैद सहनी पड़ती है। देवी चामुण्डा उसे बंधन-मुक्त करानेके लिए भाटिनी का रूप धारण कर मनुष्य लोक में आई। वह रंग काला, लंबी दुर्बल देह, लंबे दाँत [illegible], बिखरी हुई लटें, ललाट पर सिन्दूर लगाए, [illegible] मुँडे सिर, [illegible] हाथ में पालण में महाराज सिद्धराज जयसिंह के दरबार में उपस्थित हुई। उसने महाराज को बाँये हाथ से आशीर्वाद दिया। जगदेव ने उसकी ओर मुड़कर कर मूँछों पर हाथ फेरा। [illegible] माथे को [illegible] से ढँककर दाहिने हाथ से आशीर्वाद दिया और गद्दी पर बैठ गई। जगदेव वहाँ से उठकर अपने घर आ गया।

महाराज ने कंकाली से उसका परिचय पूछा, उसने कहा मैं भाटिनी हूँ। नवखंड में राजा, सती, दातार, जुझारों की खोज में फिर रही हूँ। महाराज ने कहा-तुमने मस्तक पर अंचल किसे देखकर रखा और जगदेव को दाहिने हाथ से आशीर्वाद दिया, इसका कारण। कंकाली ने कहा-उसके मूँछों पर हाथ लगाते ही मुझे ऐसा लगा कि पृथ्वीतल पर इसके सदृश कोई दातार नहीं है। महाराज ने कहा अच्छा, तुम जगदेव से दान ले आओ। मैं फिर उससे चौगुना दान दूँगा। कंकाली ने कहा। पृथ्वी पर पंवारों से दान में बाजी लगाने वाला कोई नहीं; क्योंकि-

पृथ्वी यड़ा पंवार प्रिथमी पंवारा तणीं।
एक उज्जेणी धार नी जो आनू वैसणौ॥

अतः आप उसके समान दान न दे सकेंगे। राजा ने कहा-'अच्छा। तुम पहले यहाँ का दान लाओ। फिर मैं चौगुना देने की प्रतिज्ञा करता हूँ।' वह तत्काल जगदेव के यहाँ गई। उसने पंवार से कड़ाई करते हुए कहा कि सिद्धराज जयसिंह ने तुमसे चौगुना दान देना स्वीकार किया है। अतः तुम दान दो, फिर राजा को दिखाया जाय। जगदेव ने अपनी स्त्री से पूछा कि राजा से अपने किसी बातमें बराबरी नहीं कर सकते। तुम कहो तो मैं अपना मस्तक दान कर दूँ। रानी ने कहा-अपना सर्वस्व दे सकते हैं, पर ऐसी भाटिनिएँ बहुत सी आवेंगी, आप मस्तक किस-किस को देंगे। इतने में जगदेव की एक अप्रिय राणी फुलमादे ने कहा, जीवन-सर्वस्व आपके विचार बड़े सुन्दर हैं। इस दान से ही सिद्धराज हारेगा। एक आपका और दूसरा मेरा मस्तक दे डालें। महाराजा कहाँ से ८ मस्तक दान करेंगे?, जगदेव ने कहा, धन्य क्षत्राणी! आप पहले मेरा मस्तक ले जा कर उसे दो, फिर अपना विचार करना। जगदेव ने तुरंत अपना मस्तक काटकर दिया। राणी फुलमादे ने उसे थाल में ढँककर कंकाली को समर्पण कर दिया। कंकाली ने खोलकर जगदेव का मस्तक देखा, तो वह

(शेष-पृष्ठ १६ पर)

(जो पुरुषों में बाल-दाढ़ी (साइड बर्न्स) तथा मूँछ रखाते हैं और स्त्रियाँ (लांग हेर) कटवाल रखती हैं, इनके साइज (लम्बाई-इत्यादि) से करबोझ की गणना करनी चाहिए। इस हेतु प्रत्येक शहर में सरकार को बाल-दाढ़ी-मूँछ इन्स्पेक्टरों की नियुक्त करके, निर्धारित साइज की अपेक्षा अधिक बाल-दाढ़ी अथवा मूँछ रखने वालों पर चन्द प्रतिशत के हिसाब से टैक्स का, स्थान पर ही कर-निर्धारण करके, वसूली करनी चाहिए और नाई (हज्जाम) के यहाँ भी जाँच-पड़ताल करके, वहाँ से भी टैक्स वसूल करना चाहिए। (हालाँकि साधु, फकीर इत्यादि किसीको इनसे से करमुक्ति देनी चाहिए)

(ङ) पुरुषों में कपड़ों का फैशन है-जैसे कि पतलून इत्यादियन फट-४२ से.मी.से ४५ से. मी. की चौड़ाई के पतलून बनते हैं-ज्यों-ज्यों चौड़ाई कम त्यों-त्यों वसूल टैक्स अधिक। इस हेतु जिस दर्जी के यहाँ पतलून बनाया जाए, उसी से कर वसूल करना चाहिए (बहरहाल इसी "मुरव्वत" को कर मुक्त देनी चाहिए, क्योंकि सदा अंग्रेजी सद्दस्थायी, राजनीतिज्ञ एवं प्रधान [illegible] इसका इस्तेमाल करते हैं और इस बेचारे [illegible] अनुचित करबोझ पड़ जाएगा!)।

(क) स्त्रियों में भी फर्क के अनेक प्रकार के फैशन हैं-जैसे कि मीनी-स्कर्ट। ज्यों-ज्यों स्कर्ट छोटा त्यों-त्यों टैक्स अधिक; मौजूदा ब्रेसियर्स तुमा (माफ कीजियेगा!-) चोली पहनने का फैशन है। अतः ज्यों-ज्यों चोली चुस्त त्यों-त्यों टैक्स अधिक। होट-पेन्ट एवं चुस्त कपड़ों के लिए भी कुछ ऐसा ही कराधान तय किया जा सकता है। इस हेतु भी बाजारों में घूमते (इन्स्पेक्टरों) डेटी इन्स्पेक्टर रखकर स्थान पर ही कर-निर्धारण करने का प्रावधान हो सकता है। दर्जी के यहाँ भी चन्द व्यवस्था करके कर की वसूली की जा सकती है।

(ङ) लग्न-कर एवं सन्तान-जन्म-कर भी आजमाने योग्य है।

(ङ) हवाकर के हेतु प्रत्येक नागरिक को हवा-मोटर बाँधकर, प्रति सप्ताह, मोटर में प्रदर्शित हवा-कर निकट के आयकर कार्यालय में भर दिए जाने की व्यवस्था की जा सकती है।

यों तो अब भी अनेक कराधान के प्रकार बताए जा सकते हैं। ये तो मात्र फरवरी १९७२ के लिए ही मासिक करभार के सूचक हैं। मार्च १९७२ में अनुमान पत्र आ रहा है, तब उक्त अनुमान पत्रके लिए (थोड़े और गंभीर) नए सूचन पेश किए जाएँगे।

'—टैक्स-व्यापार' से साभार

(पृष्ठ १४ का शेष)

देख रहा था। उसने भाल लेकर आशीर्वाद देते हुए कहा कि इसके धड़ को यत्न से रखना, उसके ऊपर मस्तक न देना। मैं अभी सिद्धराज को लज्जित कर आता हूँ और इस दातार-शिरोमणि को अभी जीवित करती हूँ।

मस्तक दान लेकर कंकाली जा रही थी। मार्ग में उसे जगदेव का मामा जगतसिंह खींचा मिला। उसने मामा का मस्तक देखकर कहा मामाजी की बराबरी तो नहीं हो सकती, पर मेरी एक आँख है; जिसे तुम लो, यह मेरी मुफ्त भेंट है। कंकाली नेत्र लेकर फुरती से राज दरबार में गई। उसने कहा, "राजन्। जगदेव से चौगुना दान लाओ। अभी पटरानी का युवराज था, और यह आज का मस्तक और चार नेत्र। राजा विस्मयपूर्वक उठकर रानी के पास गया और प्रतिज्ञा की बात कही। रानी ने कहा, "नाम रहे या जाये, मस्तक नहीं दिया जाता। इसी प्रकार युवराज का उत्तर मिला। राजा ने कंकाली से कहा-"मेरा और घोड़े का मस्तक तैयार है। कंकाली ने कहा, "अच्छी बात है" लाओ। राजा ने कहा, "खड्ग से उतार लो।" उसने कहा, "मैं भिक्षुक हूँ, दिया हुआ लेती हूँ।" राजा ने कहा-ऐसा काम तो मुझसे नहीं होगा। तब कंकाली ने कहा, "तुम अटारी पर चढ़कर जोर से सात बार पुकारो कि जगदेव जीता और मैं हारा, फिर सात बार उसके मस्तक के नीचे से निकलो, तो तुम्हें माफी। राजा ने झट वैसा ही करके अपने प्राण बचाए। कंकाली जगदेव के यहाँ आई, उसको धड़ पर मस्तक लगाकर उसे पुनर्जीवित कर दिया और जगतसिंह को भी एक के बदले दो नेत्र दिए। उसने जगदेव पंवार से भैरव का दान माँगा। जगदेव ने भैरव को बंधन-मुक्त कर दिया।

नाहटों की गुवाड़ बीकानेर (राज०)

(यह रचना नानूलाल चिड़ावेवाले रचित तथा श्यामलाल हीरालाल मथुरावाले द्वारा प्रकाशित है।)

(152) कल्याण पृ० 1212
भाग - 34

दानधर्मकी आवश्यकता और उसका महत्त्व

(लेखक—श्रीआत्मचंद्रजी साहब)

No - 152

विश्वके सकल प्राणियोंका जीवन परस्पर है। दूसरोंकी सहानुभूति और सहयोगसे ही वह आगे बढ़ता है। सबसे पहले तो जब वह गर्भमें आता है, माता उसे प्रेम और जतनसे पोषण करती है और जन्म होनेके बाद भी कुछ समयतक उसका जीवन माताके ही आश्रित रहता है; फिर उसे अन्य लोगोंका सहयोग मिलता और इस तरह बहुत से व्यक्तियोंसे वह बहुत कुछ सीखता है और सहयोग प्राप्त करता है। यह एक तरहसे दूसरोंका दान ही हुआ। स्वाभाविक रूपसे यह क्रिया चलती है, इसलिये चाहे इसे दान न कहें, पर सहयोग देना भी दान ही है। चाहे वह किसी तरहका हो। जब इतने अधिक व्यक्तियोंके सहयोगसे हम अपने जीवनको आगे बढ़ाते हैं, तब हमारा भी कर्तव्य हो जाता है कि हम भी दूसरोंके कामोंमें आकर उनको आगे बढ़नेमें सहयोग दें। यह तो हुई सामान्य दान-धर्मकी बात।

सभी मनुष्य एक-जैसी योग्यता, शक्ति और साधन-सम्पन्न नहीं होते, इसलिये जिनके पास जिस विषयकी अधिक योग्यता, शक्ति एवं साधनोंकी प्रचुरता है, वे जिनके पास जिनकी कमी है उनको ऐसे रहें तो दूसरोंका जीवन भी सुखी बन जाय। करुणा और उदारताका भाव दान-धर्मका मूलस्रोत है। दुखी या दरिद्र तथा सुख-साधनोंसे वंचित और बल एवं निर्बलरहित व्यक्तिको देखकर हमारे मनमें करुणाका संचार होता है और आप दूसरेकी पुकारको अपनेसे जो कुछ भी बनता है, उसे देकर हम आत्मसंतोष पाते हैं। इसी तरह हमारे पास जो चीजें हैं, उन्हें हम जिनको उनकी आवश्यकता है, उन्हें देकर उदारता दिखावें तो दूसरोंको जीवनयापन या अपनी प्रगतिमें काफी मदद मिलेगी।

सम्पत्तिकी तीन अवस्थाएँ होती हैं—भोग, दान और विनाश। भोगकी एक सीमा होती है, अनन्त अवस्थाएँ अधिक होनेपर हानि ही होती है। पर दान अपनी सामर्थ्यके अनुसार देनेसे अपने चित्तमें प्रसन्नता और दूसरोंको आराम मिलता है, जब कि भोगमें केवल अपना सुख-भोग ही मुख्य होता है। यदि भोग और दान दोनों रूपोंमें उस सम्पत्तिका उपयोग नहीं किया गया तो तीसरी नाशकी अवस्था तो स्वयं प्राप्त हो जायगी। इसलिये भी यहाँ कितने दानकी आवश्यकता है, पात्र और आवश्यकताके विवेकपूर्वक दान देते रहना ही मानव-कर्तव्य है।

उपनिषद्में एक कथा आती है, जिसमें राक्षसोंके लिये दया, देवोंके लिये दमन और मनुष्योंके लिये दान-धर्मका विशेषरूपसे उपदेश दिया गया है; क्योंकि राक्षस क्रूर स्वभावके होनेके कारण हिंसा अधिक करते हैं, अतः उनके लिये दया-धर्मकी विशेष आवश्यकता है। देवगण साधन-सुविधाओंकी अधिकताके कारण भोगोंमें बहुत लिप्त रहते हैं, इसलिये उन्हें इन्द्रिय-दमनका उपदेश दिया गया है। मनुष्य कर्माधिकारके प्राप्त कर्मद्वारा कमाई करनेवाला है और मनुष्योंमें दीन-हीन अवस्थावाले व्यक्ति अधिक हैं; अतः दान-धर्मकी विशेष आवश्यकता है। जिससे कि सब लोगोंका जीवन-यापन सुख-शान्तिपूर्वक हो सके।

प्रकृति भी हमें दान-धर्मका महान् संदेश दे रही है। उसने प्राणियोंके आरामके लिये अनेक साधन जुटा रक्खे हैं। वृक्ष हमें फल देते हैं, छाया देते हैं। नदियाँ एवं बादल जल देते हैं। वनस्पतियाँ प्राणियोंके खानेके काम आती हैं और रोग-निवारणार्थ औषधियोंके काममें भी आती हैं। सूर्य हमें प्रकाश देता है और गर्मी भी। वायु जीवनके लिये आवश्यक तत्त्व है ही; उसे लेकर ही श्वास चलता है। पृथ्वी हमारा अनन्त उपकार कर ही रही है। हम उसीके ऊपर रहते हैं, खेती करके उसीमेंसे अनाज उत्पन्न करते हैं। इसी तरह अनेक रूपोंमें प्रकृतिसे हम अनेक सुविधाएँ स्वाभाविक रूपमें प्राप्त कर रहे हैं। इसे प्रकृतिकी देन या दान ही कहा जा सकता है। यदि प्रकृति हमें ये सुविधाएँ न दे तो हम क्षणभर भी नहीं जी सकते। अतः प्रकृतिकी तरह हमें भी बिना किसी प्रकारके प्रतिफलकी कामनाके दान देना सीखना चाहिये। प्रकृति और अनेक व्यक्तियोंसे हम अनेक बातें तथा वस्तुएँ प्राप्त करके अपने जीवनको सुखी बना रहे हैं, यह उनका केवल ऋण बढ़ाना ही हुआ। जैसे हम दूसरोंसे लेते हैं वैसे दूसरोंको दें भी। तभी हम उस ऋणसे उऋण हो सकते हैं।

बहुतसे व्यक्ति यह सोचते-समझते और कहते हैं कि हमारे पास ऐसी कोई चीज है ही नहीं कि हम उसे दूसरोंको

दें। जब कि हमारी आवश्यकताएँ भी हम पूरी नहीं कर पाते और उनके लिये दूसरोंपर आश्रित हैं तो हम दूसरोंको क्या दें? पर बात यह है कि यदि गहराईसे सोचें तो मालूम होगा कि चाहे वास्तव [illegible] होनेसे वे दूसरोंको न दे सकते हों, पर दूसरोंके कामों आनेवाली अनेक आवश्यक चीजें [illegible] हैं। वास्तविक बात यह है कि [illegible] प्राप्त हों, उनमें से [illegible] और सामान्यतः दूसरोंको बिना भी दे सकते हैं, कुछ-न-कुछ दे ही। जैसे हमारे पास खानेके लिये चार रोटियाँ हैं तो हम तीनसे अपना काम [illegible] एक-आधी या पाव रोटी तो दूसरोंको दे [illegible] अनेक उदाहरण मिलते हैं कि [illegible] स्वयं भूखे रहकर भी दूसरोंकी क्षुधा निवृत्त की गयी है। [illegible] त्याग करनेके उदाहरण हमारे पुराणों और [illegible] मिलते हैं। पर मान लीजिये हमारे मनकी तैयारी उतनी नहीं है, तो भी हम सेवा और [illegible] प्रेम, आत्मीयता देकर भी दूसरोंके दुःखको कम कर सकते हैं, उन्हें सुख-शान्ति पहुँचा सकते हैं। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं, जिसके पास देनेको कुछ भी चीज न हो। जो पढ़ा-लिखा है वह दूसरोंको ज्ञान-दान तो कर ही सकता है। जो विशेष पढ़ा-लिखा नहीं, उसके पास जीवनके अनुभव [illegible] दूसरोंका मार्ग-दर्शन [illegible] उनकी कठिनाइयोंको दूर करनेका प्रयत्न करे तो इसमें उसे कुछ श्रम [illegible] नहीं [illegible] और दूसरोंको बहुत कुछ लाभ मिल जाता है। [illegible] अनेक तरहकी आवश्यकताएँ हैं और उन सबके किसी-न-किसी अंशमें पूर्ति हो एक व्यक्ति किसी भी प्रकारसे किसी [illegible] अवश्य ही कर सकता है। केवल वस्तुओंका दान ही [illegible] नहीं है। [illegible] दान [illegible] बहुत बड़ा दान है। [illegible] सहायता अर्थात् रोटी-पानी हमसे [illegible] होनेके कारण ही कोई वस्तु दे नहीं सकते, पर [illegible] देकर वे हमारा महान् उपकार करते हैं। जीवन-निर्वाहके लिये थोड़ी-सी भिक्षा लेकर हमें कितना बड़ा ज्ञान-दान देते हैं।

ऐसा भी एक [illegible] दान है और वह अनेक प्रकारसे की जा सकती है। [illegible] लेकर [illegible] किसी-न-किसी प्रकारकी सेवाकी [illegible] होती है। हम किसी व्यक्तिको [illegible] और विवेकपूर्वक उसे जानकर उसी प्रकारकी सेवासे उसे थोड़ी भी शान्ति या सुख पहुँचा सकें तो वह बहुत बड़ा दान होगा। बाहरी वस्तुओंके दानकी अपेक्षा उसका मूल्य, महत्त्व और फल अधिक भी है।

त्याग भी दानका ही एक प्रकार है। जितने-जितने अंशमें हम अपरिग्रही और त्यागी बनेंगे, उतने अंशमें भोगके साधन दूसरोंके लिये सुलभ हो जायँगे। संन्यास ग्रहण करते समय व्यक्ति जो कुछ अपना होता है, दूसरोंको दे डालता है। इसलिये उन वस्तुओंका दान तो हुआ ही, पर भविष्यमें जिन वस्तुओंका, जितने परिमाणमें वह उपभोग करनेवाला था, त्याग स्वीकार करनेपर वह उनका भोग नहीं करता, तब वे चीजें दूसरोंको अधिक परिमाणमें सहज प्राप्त हो जायँगी। हमने जो अबतक आवश्यकताओंसे अधिक संग्रह कर रक्खा है और ममत्व-बुद्धिके कारण दूसरोंको आवश्यक होते हुए भी हम उन्हें वे वस्तुएँ दे नहीं रहे हैं, यह एक बड़ा पाप है और इस पापका प्रायश्चित्त दानके द्वारा ही हो सकता है। आखिर हमने जो कुछ भी संग्रह किया है, उसे उस परिमाणमें प्राप्त करनेमें हमने दूसरोंका सहयोग प्राप्त किया है, उनका शोषण किया है, दूसरोंके जीवनयापनमें कठिनाइयाँ उपस्थित की हैं, अपने सुखके लिये दूसरोंको दुःख दिया है। अतः हमारा परमावश्यक कर्तव्य हो जाता है कि अधिकाधिक दान-धर्मको अपनायें।

मनुष्य कोमल और कठोर वृत्तियोंका सम्मिश्रित पुञ्ज है। कोमल वृत्तियोंसे संसारका व्यवहार अधिक सुखद बनता है और कोमल वृत्तियोंमें करुणा और प्रेम विशेष महत्त्व रखते हैं; पर आज प्रेम विकृत हो चला है और करुणाभाव बहुत कुछ लुप्त होता जा रहा है। थोड़े वर्षों पहले हमारे देखते-देखते किसी भी दीन-दुखीको देखकर हमारे हृदयमें करुणाका उद्रेक होता था, वैसा आज नहीं होता! कोई भिखारी हमसे रोटी या पैसा माँगता है तो हम उसे दुत्कार देते हैं, बहुत बार तो धक्का देकर भी निकाल देते हैं। कुछ व्यक्तियोंने भिखारीके वेशमें ठगाई की, इससे सब भिखारियोंके प्रति अरुचि होती जा रही है। इसका दुष्परिणाम प्रत्यक्ष है कि हमारे अंदर करुणाका स्रोत सूखता जा रहा है और वास्तविक अभावग्रस्तको भी हम समर्थ होते हुए भी कुछ सहायता नहीं कर पाते। पशुओंकी हत्या और पिटाई इतनी निर्ममतासे होने लगी है कि करुणाका तो मानो हमारे हृदयमें कोई स्थान ही नहीं रह गया है।

दया भी वास्तवमें देखा जाय तो दानका ही एक प्रकार है; क्योंकि जीवन-दान सर्वत्र बड़ा दान है और उसके लिये करुणा और दया-भावकी आवश्यकता है। जैन-ग्रन्थोंमें अभय-दानको बड़ा महत्त्व दिया गया है और अमारि[1]-उद्घोषणाको धर्मका एक अङ्ग माना है। हमसे किसी भी प्राणीको मारने या सताया जाय तकलीफ न हो और वह सुख-शान्तिपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करे—यही है अभयदान। हमने उसको निर्भय का अभयदान दान दिया है। किसी भी प्राणीको मारा न जाय; यह हुई उस प्राणीकी जीवन-रक्षा। इसीका नाम है जीवन-दान और वैसी उद्घोषणा करना ही 'अमारि उद्घोषणा' करना है। जैनाचार्योंने समय-समयपर राजाओं और प्रजाओंको प्रतिबोध देकर अमारि-उद्घोषणाएँ करवायी थीं। इससे उनके राज्यमें होनेवाले हजारों, लाखों प्राणियोंके प्राण बच गये। हम भी अपनी ओरसे पूरे सजग रहकर अनेकों प्राणियोंकी रक्षा सहजहीमें कर सकते हैं। उनके लिये यह जीवन-दान है और हमारे लिये धर्म।

यदि हमारा किसीने अपराध किया है तो हम उस अपराधके प्रतिशोधकी भावनाको भुलाकर यदि उसे क्षमा कर देते हैं तो यह हुआ क्षमा-दान। इससे वैर-विरोधका शमन होता है और दूसरेको शान्ति मिलती है। अपना चित्त भी प्रसन्न होता है। यह कहना हुआ शान्ति-दान भी कह सकते हैं।

जिस समय जिस प्रकारके दानकी जिसको आवश्यकता हो, वैसा देना ही अधिक लाभप्रद है। एक नीतिज्ञने कहा है कि अभी हमें जो सम्पत्ति और सुखके साधन मिले हैं, वे प्रायः दानधर्मके कारण ही। जो देता है, वह पाता है। जो बीज बोता है, उसे ही उसका फल मिलता है। दानसे पुण्य होता है, पुण्यसे वैभव और साधन-सुविधाएँ मिलती हैं। पद्मपुराणमें कहा गया है—

> सुदानात् प्राप्यते भोगः
> सुदानात् प्राप्यते यशः।
> सुदानाज्जायते कीर्तिः
> सुदानात् प्राप्यते सुखम्॥

अच्छे दान देनेसे भोग प्राप्त होते हैं, यश-कीर्ति और सुख मिलता है। पद्मपुराणमें भी कहा गया है—

> सुपात्रदानाच्च भवेद् धनाढ्यो
> धनप्रभावेण करोति पुण्यम्।
> पुण्यप्रभावात् सुरलोकवासी
> पुनर्धनाढ्यः पुनरेव भोगी॥

सुपात्र-दानसे मनुष्य धनाढ्य होता है। उस धनका सदुपयोग करके पुण्य उपार्जन करता है। पुण्यसे देवगति मिलती है, वहाँसे यह मनुष्य-जन्म पाकर समृद्धि प्राप्त करता है और उसे भोगता है।

मनुस्मृतिमें भी निरन्तर दान देनेकी प्रेरणा देते हुए लिखा है—

> दानेन भोगाः सुलभा भवन्ति
> दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
> दानेन भूतानि वशीभवन्ति
> तस्माद्धि दानं सततं प्रदेयम्॥

दानसे भोग-सामग्री सुलभ रूपसे प्राप्त होती है, वैरका नाश होता है, सभी प्राणी वशमें होते हैं। इसलिये निरन्तर दान देते रहो।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भी सात्त्विक दानके सम्बन्धमें कहा है—

> दातव्यमिति यद् दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
> देशे काले च पात्रे च तद् दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥

'देना चाहिये' इस विचारसे देश-काल और पात्रका ध्यान रखते हुए प्रतिफलकी कामनासे रहित होकर जो कुछ दिया जाता है, उसे पण्डितलोग सात्त्विक दान कहते हैं।

एक नीतिज्ञने तो बहुत ही सुन्दर प्रबोध दिया है—

> भिक्षुका नैव याचन्ते न दत्तं धनमर्थिनाम्।
> तद्दानं नैव जानन्ति प्रातः कस्य भविष्यति॥

भिक्षुकलोग जो घर-घर घूमकर याचना कर रहे हैं, वे वास्तवमें मनुष्योंको प्रतिदिन यह बोध दे रहे हैं कि यदि आपको समृद्धिकी कामना है तो दान दीजिये, दान दीजिये। दान नहीं देनेवालेकी क्या स्थिति होती है—इसके उदाहरणरूपमें हम आपके सामने उपस्थित हैं। जो दान नहीं देते हैं, उन्हें हमारे-जैसा फल मिलनेवाला है अर्थात् भीख माँगनी पड़ेगी।

समुद्र जलका केवल संग्रह-ही-संग्रह करता है, इसीलिये

---

१. किसीको नहीं मारनेकी।

यह रत्नाकरकी आग बुझा दे और [illegible] उसको पानी देते हैं इसलिये आपाजापर चढ़कर गर्जना कर रहे हैं। इस भावको व्यक्त करनेवाला एक पद्य संकल्प चिन्तामणिमें मिलता है। यथा—

संपर्कात्परतः [illegible] रत्नाकरम् ।
दत्ता तु [illegible] [illegible] ॥

याचना [illegible] या दुष्टपने [illegible] हैं। एक तरहसे ये दाताके लिये [illegible] हैं जो इन गुणका लाभ करवाते हैं। इसलिये एक विद्वान् कहा है कि याचकके याचना करनेपर दाता हर्षित होते हैं और दान देकर मनमें प्रसन्न होता है। ऐसे दानको देनेवाले और लेनेवाले दोनों, उस दानका अनुमोदन करने [illegible] हैं तो दानके समय [illegible] इसी [illegible] दान का अनुमोदन करनेवालों का दानके समान ही फल मिलता है।

वाचितो यः [illegible] दत्ता च प्रतिनन्दति ।
तं [illegible] [illegible] ॥
फलं [illegible] [illegible] ।
फलं [illegible] [illegible] ॥

[illegible] कहा है कि दानके समान इस लोक-परलोकमें कोई भी मित्र दानी हितकारक नहीं है—

[illegible]

[illegible] कहा गया है कि दान [illegible] करता है, पुण्यके समूहका विस्तार करता है, कष्टका निवारण करता है, तेजकी संततिको धारण करता है, पापके समूहको नाश करता है, संसार-समुद्रसे पार उतारता है। धर्मकी उन्नतिका कारण है और मोक्षके सुखका भी कारणभूत है, इसलिये दान जगत्में सदा विजयी रहे।

दानके पाँच भूषण उपदेश प्रासाद-ग्रन्थमें बतलाये हैं कि १—सत्पात्रको दान देते समय आनन्दके आँसू बहावे, २—शरीरमें रोमाञ्च हो जाय, ३—मनमें बहुमानकी भावना हो, ४—प्रिय वचन बोले और ५—दानकी अनुमोदना करे। ये दानके पाँच भूषण हैं। इसी तरह दानके पाँच दूषण भी बतलाये हैं—१—अनादरसे दान दिया जाय, २—समय न देकर विलम्बसे दिया जाय, ३—मुँह फेर या मचकोड़कर दिया जाय, ४—कटुवचन बोले और ५—दानके बाद पश्चात्ताप करे। ये दानके पाँच दूषण हैं।

दान देकर अभिमान करना, यश और कीर्तिकी कामना करना और प्रतिफलकी आशासे देना, किसीके दबाव या लिहाजसे देना, अपात्रको देना, दान देकर पछताना—ये दानके फलको कम या नाश करनेवाले हैं।

दान-धर्मके माहात्म्यके सम्बन्धमें अनेकों दृष्टान्त और कथाएँ विविध ग्रन्थोंमें पायी जाती हैं। इस तरह दानधर्मका माहात्म्य भारतीय धर्मोंमें बहुत अधिक बतलाया गया है। इससे देनेवालेके परिग्रहका त्याग होता है, चित्त प्रसन्न होता है और लेनेवालेकी भी आवश्यकताएँ पूरी होनेसे उसका जीवन सुखी बनता है।

इस प्रभुकी वस्तुके द्वारा प्रभुका ही कार्य होता रहता है

मेरे [illegible] प्रभुका ही पूर्णाधिकार हो गया है। अतएव अब न तो मेरा आना [illegible] है, न कोई कामना ही। ये सभी केवल प्रभुके ही यन्त्र बने सदा-सर्वदा उन्हींके इच्छानुसार [illegible] रहते हैं। इसलिये अब मेरे द्वारा ऐसा कोई कर्म कभी बनता ही नहीं, जो किसी भी प्राणीके लिये अहितकर हो, जो मेरे लिये किसी भी अच्छे-बुरे फलका उत्पादक हो या जिसके कारण मुझे कभी जाना-आना पड़े। अब इस प्रभुकी वस्तुके द्वारा प्रभुका ही संकल्प पूरा होता है और प्रभुका ही कार्य होता है। प्रभु ही इसके चलानेवाले हैं और वे ही चलनेवाले हैं।

(153) भरत भारती पे० 101-108

देवकुमार चरित्र

140-153

भँवरलाल गाहा

कुसुमपुर के राजा सूर की अमरछाया में दत्त नामक श्रेष्ठी निवास करता था जिसके महालक्ष्मी नामक स्त्री सुशील और धर्मिष्ठ थी। एक दिन गवाक्ष में बैठी हुई महालक्ष्मी की जब अनेक दासियाँ सेवा कर रही थी तो उसने निकटवर्ती घर में अपनी एक सखी को पुत्र का लालन पालन करते देखा। उसके हृदय में मोह जागृत हुआ और अपने निःसन्तान होने का दुःख उमड़ आने से वह उदास होगई। वह कुशला दासी के पूछने पर इतने अपने दुःख का कारण सम्भवतः बतलाते हुए पूर्वकृत कर्मों को दोष देते हुए सेठ को चिन्ता की बात न करने का निर्देश किया। इसके बाद वह जब बच्चों को देखती तो उसका दुःख बढ़ता जाता। सेठानी की विह्वल वेदना देखकर सेठ ने उसके बहुत से इलाज किये पर स्वस्थ न होते देख उसने चिन्ता का कारण ज्ञात किया और पुत्र-प्राप्ति के लिए उपाय करने का आश्वासन देकर सेठानी को कुछ निश्चिन्त किया। सेठ ने नगर के बाहर उद्यान स्थित मंदिर में जा कर कालकुण्डा देवी का आराधन किया। देवी ने प्रगट हो कर कहा—इस समय तुमने पुत्र-कामना असमय की है अभी जो पुत्र होगा तुम्हारा विनाश करने वाला होगा, यदि कुछ समय बाद चाहोगे तो तुम्हें सुखकर होगा, सेठ ने अपनी स्त्री की चिन्ता में अपना कोई विचार न कर तात्कालिक पुत्र-वाञ्छा प्रगट की। देवी ने कहा—यदि चाहते ही हो तो पश्चिम की ओर स्थित अक्षवृक्ष का एक फल लेजा कर अपनी स्त्री को खिला दो जिससे उसके एक पुत्र होगा।

देवी ने यद्यपि एक ही फल लेने को कहा था पर सेठ ने बहुपुत्र प्राप्त्यर्थ बहुत से फल ग्रहण किये, पर वह ज्योंही नीचे उतरा एक से अधिक जितने फल ग्रहण किये थे सब वृक्ष पर जाकर लग गये। देवी के प्रभाव से उसी दिन सेठानी गर्भवती हुई। गर्भकाल बीतने पर सेठानी ने देवकुमार नामक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। सेठ ने पुत्र-जन्म पर पर खूब बधाइयाँ बांटीं और गुणवंत भावों द्वारा प्रतिपालित होकर बड़ा हुआ। कलाचार्य के पास सकल कलाओं का अभ्यास कराके सेठ ने देवकुमार का विवाह कर दिया। इसके बाद वह स्वच्छंदता पूर्वक रहता हुआ दुर्जनों की संगत से वेश्यागामी हो गया। एक बार उसने मित्रों के साथ देवकुल में स्थित रत्नमय पुतली देखी और उस पर मुग्ध हो गया। मित्रों से उस पुत्तलिका का परिचय मिला कि किसी विदेशी कलाकार ने स्पर्द्धा एवंक लावण्यवती सौभाग्य मंजरी देवता का प्रतिबिंब निर्माण किया है। वह मित्रों के साथ सौभाग्यमंजरी के घर पहुंचा। अक्का ने उसका बड़ा स्वागत सत्कार किया और सौभाग्यमंजरी से मिलाया। अब वह रात दिन नहीं रहने लगा और वेश्या के सेवकों के साथ अपनी मुद्रा भेज कर सोना से बांसली स्वर्ण मुद्राएँ मंगाकी। इसके बाद वह बारबार धन मंगाता रहता। बारह वर्षों में उसने बारह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ मंगा कर सेठ का सारा धन स्वाहा कर दिया। एक दिन एक हजार मुद्राएँ मंगाने पर माता ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपने आभूषण भेजे। सेवक से वृत्तान्त ज्ञात कर दासी के द्वारा सौभाग्य-मंजरी ने आभूषण लौटा दिये और दुर्जन देवकुमार को भर्त्सना करने लगी। अक्का ने उसे निर्धन समझ कर निकाल देने के लिए सौभाग्यमंजरी से कहा पर उसने कहा कि जिस पुरुष के बारह वर्षों में करोड़ों रुपये

पास किये उसने अब मुझे द्रव्य की आवश्यकता नहीं, मेरे तो वही स्वामी हैं। पर लोभी कहां कुछ मानने वाली थी, उसने दास-दासियों द्वारा आज्ञा उल्लंघन द्वारा अपमानित कराके स्वाभिमानी देवकुमार को निकलने के लिए बाध्य कर दिया। उसने सौभाग्यमंजरी से कहा कि मुझे बारह वर्ष हो गए अब माता पिता के पास वेश धारण करने की उत्कण्ठा है अतः एक बार घर जाऊंगा। सौभाग्यमंजरी ने उस प्रियतम को रोकने की चेष्टा की पर वह अपने अपमान की बात प्रकट न कर कुछ दिन बाद आने को कह कर अपने घर लौटा।

देवकुमार ने घर आकर माता को नमस्कार किया। घर की टूटी-फूटी हालत देख कर पिता और बहनों की के बारे में पूछा तो महाजनों ने कहा कि घर धन के बिना जीर्ण-शीर्ण हो गया, बहु पीहर गयी है, पिता दुकान पर हैं पर द्रव्य के बिना कोई भी व्यापार करने में असमर्थ हैं! तुमने इतने वर्षों से घर को याद किया तो सही, अब तो हमारा दुःख दूर करो! हमने ही मोहवश तुम्हें दुष्ट संगति से नहीं रोका और करोड़ों रुपये लुटा दिये।

माता के उपालंभ से देवकुमार दुःखी होकर अविलंब द्रव्योपार्जन करने का उपाय सोचता हुआ घूमने लगा। उसे एक योगिनी मिली जिसे देवकुमार ने विनयपूर्वक नमस्कार किया। योगिनी ने उसे बारह दीवाली तक जीने का आशीर्वाद दिया। देवकुमार ने कहा कि माता! यह आशीर्वाद न देकर शीघ्र मरने का आशीर्वाद दो। योगिनी ने उसके दुःख का कारण जान कर उसे एक ऐसी गुटिका देते हुए कहा कि इसके प्रभाव से तुम स्वेच्छानुसार रूप परिवर्तन कर सकोगे और अपने प्रकृत रूप में आ सकोगे पर इसका रूप ऐसा है कि तुम्हारा पुत्र तुम्हें प्रकृत रूप में ही देखेगा। गुटिका प्राप्त कर वह संध्या समय अपने घर लौटा। इधर महाजनों ने सेठ को कह दिया कि देवकुमार आया घर आया है, मेरे फटकारने पर वह कहीं चला गया है, आने पर उससे कुछ भी न कहें, अन्यथा वह विशेष दुःखी होकर अनिष्ट न कर बैठे। अतः सेठ ने उसे कोई उपालंभ न दिया।

एक दिन शक्रमहोत्सव के पर्व में नगर को त्यस्त देख कर देवकुमार ने विचार किया कि सहज द्रव्योपार्जन के लिए राजमहल में चोरी करना सर्वोत्तम है। उसने मध्य रात्रि में सुंह चोंच कर हाथ में खड्ग लिया और पिता से शक्र-महोत्सव देखने का बहाना कर सोधा राजमहल की ओर चला। सेठ भी दुकान बंद करके उसके पीछे-पीछे हो गया। देवकुमार राजमहल के गुप्त द्वार की ओर गया जो उसे संधि मिल गई जिससे वह राजमहल प्रविष्ट हो गया। उसने देखा कि राजा जहां निश्चिन्त सोया हुआ है, उसी पलंग के पाये बहुमूल्य रत्न-जटित हैं। उसने एक पाया निकाल कर उसके स्थान में कांसी लगा दी, इसी प्रकार दूसरा और तीसरा पाया भी निकाल लिया। इधर सेठ भी दूर से पुत्र को राजमहल के अन्तःपुर में प्रविष्ट होते देख चुका था, वह मन में कई प्रकार के विकल्प करता हुआ स्तब्ध खड़ा रहा। अन्त में साहस करके संभ्रान्त से प्रविष्ट होकर खाट के निकट खड़े हुए ऐसा और पुत्र को इस पाप से पीछे हटने का संकेत दिया। देवकुमार ने कहा कि पिताजी! अब चुप रहिए, जो होना था हो चुका। वह ज्योंही चौथा पाया निकालने लगा, राजा जग गया अतः वह तलवार लेकर चोर का पीछा करने को उठा तो देवकुमार कुर्ती से तीन पायों को लेकर बाहर निकल गया। सेठ ने मस्तक बाहर निकाला ही था कि राजा ने पीछे से उसके पैर पकड़ लिए। सेठ के हाथों को देवकुमार ने पकड़ लिया अतः राजा उसे अन्दर नहीं खींच सका। सेठ ने देवी के पायों को चार कर कहा कि बेटा अब मेरा मस्तक उतार कर ले जाओ ताकि लोगों में

जा दिये। पिशाच रूप धारी देवकुमार ने कबन्ध को नदी तट पर बैठाकर अग्नि-संस्कार कर दिया और फिर वह अपने असली रूप में घर आ गया।

प्रातःकाल सुभटों से कबन्ध को पिशाच के रूप में बेताल जलाने की बात सुनकर राजा ने उन्हें खूब फटकारा। देवकुमार की उपस्थिति में मन्त्री ने कहा—"राजन्! अब चोर अपने पिता को जला चुका तो अब वह भस्म को नदी में प्रवाहित करने अवश्य आवेगा!" राजा ने कोतवाल को भस्म पर पहरा देने की आज्ञा दी। कोतवाल ने श्मशान में अपना डेरा लगा दिया, पर तीन दिन तक वहाँ कोई नहीं आया। चौथे दिन देवकुमार ने सन्ध्या समय कमलश्री वेश्या का रूप बनाया और गले में बड़े-बड़े मोतियों का हार पहन कर इस प्रकार नदी पार से आया जैसे कोई शहर गाँव जाकर आई हो। कोतवाल ने उससे कहा—"प्रिये! आज रात में तुम आई तो अच्छा हुआ, रात आनन्द से कटेगी। पर तुम अभी कहाँ से आ रही हो?" कमलश्री रूपी देवकुमार ने कहा—"मैं अपनी इष्टदेवी की यात्रा करने गई थी, पर रात हो जाने से शहर जाने में मेरे पास बहुमूल्य आभूषण होने के कारण भय लगता है और न जाने पर मुझे माँ की चिन्ता का भय लगता है, दूसरी बात यह भी है कि मुझे देवीयात्रा के निमित्त अक्षय्य का नियम भी है।" कोतवाल ने विनय होकर कहा—"अच्छा, तुम कुछ देर द्यूत-क्रीड़ादि से मनोविनोद तो करो, कोई मैं अपने सिपाहियों के साथ तुम्हें घर पहुँचा दूँगा।" कमलश्री भस्म पर द्यूत खेलने का बहाना रखकर कोतवाल के साथ द्यूत-क्रीड़ा करने लगी, उसने थोड़ी देर में कोतवाल की नामांकित मुद्रा जीत ली और देर होने के बहाने से जाने के लिये उठी। कोतवाल पास ही बैठा था, गले में पहने हुए मोतियों के हार से उसका स्पर्श होते ही कमलश्री ने चालाकी से उसे तोड़ डाला। मोती एक-एक करके राख में मिलने लगे। उसके शोध करने पर काम-कलाविद् कोतवाल ने राजाज्ञा की भूलकर कहा—"तुम्हारा एक भी मोती कहीं नहीं जायगा, राख को बाँध कर फिर मोतियों को बीनो, यदि घट गया तो मैं दायक हूँ, चिन्ता न करो।" कमलश्री ने नदी में भस्म को सरकाते-सरकाते सारे मोती धोत लिये और जाने लगी। कोतवाल ने सामूल देकर सुभटों के साथ विदा करते हुए कहा—"कल तुम्हारे द्वारा जीती हुई मुद्रा का मूल्य लेकर मैं अपनी मुद्रा वापस मंगा लूँगा!" कोतवाल के सुभट उसे नगर-द्वार तक पहुँचा गये।

प्रातःकाल देवकुमार राजसभा में गया। थोड़ी देर में कोतवाल ने राजा से आकर कहा—"मैं वहाँ चार दिन रहा, पर कोई नहीं आया।" राजा ने जब कमलश्री का वृत्तान्त सुना तो उसने कहा—"वह कमलश्री न होकर अवश्य चोर होगा जो अपने साथी को रात भर में चौंककर कोतवाल को ठग गया।" इस बात की प्रतीति के लिये कमलश्री को तत्काल बुलाकर पूछा गया तो उसने कहा—"मैं कल नगर के बाहर ही नहीं गई।" कोतवाल अपनी मुद्रिका की चिन्ता करने लगा। कोतवाल को आशा हुई कि इतना सब कुछ किया है तो वह सिंहदत्त भी अवश्य होगा! अतः नगर में जहाँ सिंहदत्त होगा हो, वहीं घेरकर रखी जाय! कोतवाल ने सर्वत्र सिपाहियों को चारों ओर फैला कर दिया। देवकुमार ने घर आकर मोतियों को छिपाने के लिये अपुर खाद्य-सामग्री के साथ एक गुप्त स्थान में रखी और जोर्ण देवकुल के रहने वाले अन्धे ब्राह्मणों के पास देह पर मूसल का वेष कर पहुँचा। वे लोग भूखातुर थे, देवकुमार उन्हें निमन्त्रित कर एक गुप्त स्थान में ले गया और उन्हें अच्छी खाद्य खिला पिला कर रात में वहीं रखा। प्रातःकाल शीघ्रान के नाम से सिंहदान करवा के भोजन करवा और १६-१२ द्रम दक्षिणा दे देकर सबको जीर्ण देवकुल में पहुँचा दिया। चारों रात के समय कोतवाल घूमता हुआ जीर्ण देवकुल के पास आया तो उसने अन्धे ब्राह्मणों से सुना कि आज

ऐसा विद्वान और भोजन दक्षिणा को हमने कभी नहीं पाया। कोतवाल ने चोर का अनुसंधान पाने के लिये ग्रन्थों को तंग किया, पर वे बेचारे कृत्रिम टौंकराम-राम के सिवा कुछ न बता सके। कोतवाल ने जब अपना गुस्सा अंधे ब्राह्मणों पर निकाला तो लोगों ने रोते-चिल्लाते ग्रन्थों को उनके द्वारा पिटते हुए सुनाया।

प्रातःकाल कोतवाल ने ग्रन्थों द्वारा टौंकराम के पिटने का वृत्तान्त राजसभा में सुनाया तो राजा ने कहा—"चोर ने अपने पिता का समस्त और्ध्वदैहिक कृत्य करके अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर डाली है!" देवकुमार ने कहा—"देव! बुद्धि के द्वारा ही मनुष्य विजय प्राप्त करता है, उसके द्वारा ही वह राजा की चतुरंगिणी सेना को हरा देता है।" मंत्री, सेनापति आदि ने जब सर नीचा कर लिया तो राजा ने चोर को न पकड़ने के अपराध में निश्चित दो दण्ड।

उसी समय कमलश्री वेश्या ने भरी सभा में प्रतिज्ञा की कि चोर को मैं पकड़ लाऊँगी!" वह राजा से चौथा पाया लेकर अपने घर आई और माता से कहा—"माता! मैं राजा के समक्ष तीन पायों के चोर को पकड़ने की प्रतिज्ञा करके यह पाया लाई हूँ!" माता ने वह पाया अपने पास रख लिया और लोगों को पाया दिखाकर कहती कि कमलश्री के मस्तक में यही प्रविष्ट हो सकेगा जो चौथा पाया लायेगा! लोग दूसरे पाये ले-ले कर आगे बढ़े, माता ने सबको अस्वीकार करके लौटा दिया।

इधर देवकुमार वेश्या को दी हुई प्रतिज्ञा सुन कर राजसभा से घर की ओर रवाना हुआ। जब वह उपाश्रय के पास से निकला तो उसके कानों में मुनिराज की उपदेशध्वनि पड़ी, वह चुपचाप उपाश्रय में प्रविष्ट होकर आचार्य महाराज के व्याख्यान सुनने लगा। उस समय ऊर्ध्वगमन का अधिकार चल रहा था, मुनिश्री ने इस विषय में कालीसुत और परशुराम का उदाहरण बतलाया, जिसकी कथा यहाँ लिखी जाती है।

कालीसुत और परशुराम की कथा

कम्पिलपुर नगर में चन्द्रेश्वर नाम का राजा राज्य करता था जिसके वसुन्धरा नाम की रानी और अर्जुन नामक मंत्री था। अर्जुन मंत्री की स्त्री देवश्री और उसका संगम परशुराम बड़ा बुद्धिशाली और विद्याप्रेमी था। वह रात-दिन शास्त्रचर्चा में व्यस्त रहता था और उसके पास विद्वान् मण्डली का जमघट रहा करता। उसे गृहचिन्ता से पराङ्मुख देख कर मंत्री कभी-कभी उसे मृदुतापूर्वक उपालम्भ देते हुए राज-कार्य व गृह-कार्य संभालने की प्रेरणा देता पर परशुराम उसे हंसी में उड़ा देता। पिता को गंभीरतापूर्ण बुद्धिमान् पुत्र को खेद न हो इसलिए प्रकट रूप से विशेष न कह कर मन ही मन संतप्त रहता। एक दिन राजसेवक ने राजा का बहुमूल्य रत्नजटित आभरण लाकर मंत्री को संभलाया। मंत्री राजसभा में जाने को प्रस्तुत था अतः उसने परशुराम को संभाल कर रखने को दे दिया। परशुराम उस समय शास्त्रचिन्ता में तल्लीन था अतः उसके पास में पड़े हुए आभरण की ओर ध्यान नहीं दिया और मौका पाकर कालीसुत नामक चोर उसे लेकर भाग गया।

थोड़ी देर में जब परशुराम ने आभरण को नहीं देखा तो वह चिन्तित होकर नौकरों को पूछ-ताछ करने लगा। मंत्री ने आते ही आभरण गायब होने की बात सुनी तो क्रोध और दुःख के कारण क्रोधान्ध होकर उसने पुत्र को खूब फटकारा। "परशुराम ने तो आभरण संभाल दिया पर अब आप अपना बड़प्पन क्यों संभालते हो दूसरे मंत्री ने कह कर अर्जुन मंत्री को शान्त किया।

अपने विद्यान्वेषण पुत्र को भी रोष रूप में परिणमते देख कर परशुराम मन्त्रशक्ति में घर से निकल पड़ा और उत्तर दिशा की ओर चलता हुआ इन्द्रपुर नगर के पास पहुँचा। वह नगर के बाहर

मैं उपवास का आचरण करूं ! उस देवकुमार पिता-माता के पास से हिचकिचाता तो सेठ ने अपने पास रखे हुए तालपुट विष को खा लिया। देवकुमार पिता को मरा हुआ देखकर पश्चात्ताप करने लगा। उसने लोकापवाद से बचने के लिये पिता के मस्तक और तीन पैरों को ग्रहण कर लिया और पर आकर गुप्त रूप से उसका अग्नि संस्कार कर दिया। माता को उसने सूचित कर दिया कि पिताजी बाहर गांव गये हैं, उन्हें कई दिन लगेंगे।

राजा ने बड़े परिश्रम से सेठ के पैरों को खींचा तो उसे केवल धड़ हाथ लगा। राजा ने प्रातःकाल मंत्री आदि के समक्ष कहा कि दुष्टों आदमी चोरी करने वाले थे। एक के धड़ को ही मैं प्राप्त कर सका, पर उस पापी के होशियार चोर को पकड़ना आवश्यक है। देवकुमार भी राजसभा की हलचल देखने के लिये राजसभा में आया और राजा को नमस्कार करके अपने पिता के स्थान पर बैठ गया। मंत्री को राजा ने कहा कि चोर पकड़ने के लिये इस कबन्ध को सिंह-द्वार पर रखदो ताकि दूसरा चोर उसे देखकर अवश्य रुदन करता हुआ पकड़ा जायगा। मंत्री की सलाह से राजा ने कोतवाल को रात्रि के समय कबंध पर विशेष नजर रखने की आज्ञा दी। देवकुमार ने मन ही मन राजा को छकाने के लिये रूपके समय रूपक करने का विचार किया और अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये नगर के बाहर गया। उसने एक छाछ बेचने वाली वृद्धा को गांव से आते देखकर उससे छाछ की मटकी खरीद ली फिर अपने वस्त्र उसे देकर उसके वस्त्र स्वयं ले लिये, वृद्धा प्रसन्न होकर अपने गांव की ओर लौट गई। देवकुमार ने मुँह में गुटिका रख कर छाछ बेचने वाली का रूप लिया और "छाछ लो, छाछ लो" करता हुआ राज मार्ग से निकलने लगा। उसने कबंध के पास भीड़ देखकर सिपाही से कुछ दूर हटाने का आग्रह किया। सिपाही भाद की रक्षा में व्यग्र था। उसने ऊपर-ऊपरी प्रहारों द्वारा सिपाही को मूर्छित कर दिया। देवकुमार पछाड़ खाकर गिर पड़ा, जिससे छाछ की मटकी फूट गई। वह उच्च स्वर में रोता हुआ कहने लगा—"हे माँ! मैं तुम्हें घर आकर क्या जवाब दूँगी?" लोगों द्वारा रोने का कारण पूछने पर उसने कहा—"मैं अपने गाँव से छाछ बेचने आई थी, इस भीड़ को देखते हुए कारण पूछने लगी तो इस सिपाही ने धक्का देकर मुझे गिरा दिया, मेरी छाछ की मटकी फूट गई, अब मैं घर आकर क्या जवाब दूँगी। मुझे घर में पैर भी नहीं रखने दिया जायगा!" लोगों ने कोतवाल से कुछ पैसे देकर इस निर्धन से पिंड छुड़ाने के लिये कहा। कोतवाल से पैसे पाकर देवकुमार स्वस्थान चला गया।

अपने पिता के अग्नि-संस्कार की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये युक्ति सोचता हुआ मध्यरात्रि में देवकुमार राजमहल के पास आया। राजा ने आरक्षक से अब छाछ बेचने वाली की बात सुनी तो उसने कोतवाल से कहा—"तुम्हें वह चोर तो के रूप में ठग ले गया है!" वह पितृ-विरह से रुदन करने के साथ-साथ छाछ की मटकी का मूल्य भी ले गया है। अब वह अग्नि-संस्कार करने अवश्य आयेगा। अतः श्मशान में से लाकर कबंध की रक्षा करो और वहाँ जो भी स्त्री-पुरुष आवे उसे गिरफ्तार कर लो। राजा की आज्ञा से कबंध को श्मशान में लेजाकर सशस्त्र पहरे में रखा गया।

मध्यरात्रि में देवकुमार ने लकड़ी, गेरू और काजल से देह रंजित की तथा विचित्र रोमांच लगाकर कौड़ियों के गहने और गले में नौलख हार धारण की। मुँह से बाहर दाढ़ाओं को निकाले हुए उसने स्कन्धों पर दोनों-पांच दीपक लगा लिये। उसने अपने मस्तक पर सछिद्र दीपक धर लगा लिया और फेत्कार करता हुआ भयंकर रूपमें श्मशान में उपस्थित हुआ। सुभट कोश उस साधारण विशाल से भयभीत होकर कुछ दूर धूप की ओट में

उपाय में विधान करने लगा तो उसे पर्वतक मुनि की मधुरवाणी सुनाई दी। वह मुनिराज के दर्शनार्थ में गया और उपदेश श्रवणानन्तर चन्द्रादान (चोरी) का सर्वथा त्याग कर नगर में प्रविष्ट हुआ। मार्ग में चलते हुए उसे जयदेव सेठ मिला, जिसके साथ वार्तालाप होते ही परशुराम ने अपने सद्गुणों से उसका मन अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। सेठ उसे अपने घर लेजाकर पुत्र की भाँति रखने लगा।

एक दिन वह सेठ के साथ घूमने निकला। एक पुष्करिणी में हाथ-पैर धोते हुए सेठ जयदेव की बहुमूल्य अंगूठी गिर पड़ी जिसे परशुराम ने देखकर अपने पास रख ली। मार्ग में सेठ को अपनी रिक्त अंगुली देख कर अंगूठी का ध्यान आया तो वह आकुल-व्याकुल हो गया। परशुराम ने सेठ को सकारण अंगूठी सौंप दी जिससे वह उसकी प्रशंसा करता हुआ कृतज्ञता ज्ञापन करने लगा। एक बार परशुराम सेठ के पास अपना सारा शरीर ढँक कर बैठा हुआ था तो राजा के आभरण का चोर कालीमुख आकर सेठ को वह आभरण दिखाने लगा। सेठ ने देखते ही कहा—"यह वस्तु तो किसी राजा के घर की है।" परशुराम ने कहा—"अरे कालीमुख! तुम यहाँ कहाँ?" कालीमुख ने परशुराम को पहचानते हुए भी कहा—"मैं तो कालीमुख नहीं हूँ। और न मेरी आपसे कोई जान-पहिचान है।" परशुराम ने कहा—"तुम चन्द्र मंत्री के नौकर कालीमुख हो!" उसने जब परशुराम को प्राप्त बतलाया तो सेठ ने कहा—"तुम कौन हो?" उसने कहा—"मैं रोहण नगर के राजा का संग बानक सेवक हूँ, राजा ने मुझे यह आभरण देखने के लिए भेजा है, इसका मूल्य एक लक्ष स्वर्णमुद्रा है।" सेठ ने कहा—"मूर्ख! झूठ बोलना भी तू बराबर नहीं जानता! इसका एक-एक रत्न लाख-लाख का है? तुमने लोभ के वश यह चकार्य किया है, किन्तु चोर चोरी की वस्तु का सच्चा मूल्य नहीं जाना करता।"

कालीमुख क्रोध में आकर कहने लगा—"मैं चोर नहीं हूँ, इन्द्र मेरे लिए मूल्य सच्चा है। आप मुझे अपना आभरण वापिस दे दीजिये।" परशुराम ने सेठ को आभरण लौटाने से मना करते हुए कहा कि यह निश्चित चोर है। कालीमुख "मैं लुट गया, मैं लुट गया।" कहता हुआ राजा के पास जाकर फुकार करने लगा। राजा ने सेठ जयदेव और परशुराम को आभरण के साथ अपने पास बुलाया। परशुराम ने राजा को सारा वृत्तान्त कहा तो कालीमुख उसे मिथ्या बताते हुए अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिए देवों के साथ दिव्य करने के लिए प्रस्तुत हो गया। राजा आभरण को देखते ही मुग्ध हो गया और बोला—"भाई! तुम देवीपूजा के निमित्त पास्तवर्ती कुण्ड में प्रविष्ट होकर कमल ले आओ। वह दृष्टिविष सर्प से डसता। सर्प विषाग्नि मकरादि जन्तु उसे भक्षण कर लेते।

राजा ने परशुराम से कहा—"अब तुम ही सर्प में जाकर कमल ले आओ।" उसने कहा—"राजन्! उसकी प्रसन्नता से मेरी शुद्धि स्वतः प्रमाणित हो गई फिर भी आपकी यही आज्ञा है तो मैं अभी कमल ले आता हूँ।" परशुराम 'अभी अरिहन्त' बोलकर सर्प में उतरा तो एक मन्त्र से उसे अपनी पीठ पर धारण कर लिया, वह सरोवर में से बहुत से कमल लेकर निकाले गया। लोगों की 'धन्य' 'धन्य' उद्घोषणा के बीच चण्डिकादेवी के पुजारी ने उसके गले में पुष्पमाला पहना दी।

इस पर भी जब राजा ने आभरण नहीं दिया तो सेठ जयदेव ने कहा—"राजन्! यह कान्तिपुर के राजा के मंत्री का पुत्र है, सामान्य व्यक्ति नहीं, इसका माहात्म्य आप अभी देख ही चुके हैं अतः इसे सम्मान पूर्वक आभरण देकर सुखी दें।" राजा ने इस विषय में चित्त पात्र करने को कहते हुए सभा विसर्जन कर दी। परशुराम ने सेठ से कहा—"अपरि काष्ठ के पिंजरे से निकल कर आभरण वस्त्र-पिंजरे में वह गया

है पर अब मेरा ऐसा हुआ कहीं नहीं जा सकता, मुझे रात्रि भर जाने की आज्ञा दीजिये ! यह अन्याय पर तुला हुआ राजा विषम संकट में पड़ेगा !" ऋषिदेव ने "उसे कुछ दिन रुको, मैं फिर राजा को शिक्षा करके देखता हूँ !" कहा तो परशुराम वहीं रुक गया,

इसी नगर में गुणवल्लभ नामक मंत्री रहता था, जिसके यथार्थ नाम वाली सर्वांगसुन्दरी नामक स्त्री थी। एक दिन उसे स्वपरिवार नरीक्षण करने के पश्चात् एक वृद्ध ने देखा तो वह उस पर मुग्ध होगया। मंत्री को राजा के पास कार्याधिक्यवश जाने में विलम्ब होता देखकर वृद्ध ने मंत्री का रूप धारण कर घर में प्रवेश करते हुए द्वारपाल से कहा कि आजकल धूर्त लोग जनता को ठग लेते हैं अतः किसी भी व्यक्ति को घर में प्रविष्ट न होने देना ! द्वारपाल के आज्ञा शिरोधार्य करने पर वह सीधा सर्वांगसुन्दरी के महल में गया और उसे सोलह शृंगार कर सजे हुए पलंग पर बैठे देखकर मधु वचनों से उसे पुकारने लगा। सर्वांगसुन्दरी को ठीक अपने पति जैसा दिखने पर भी उसके व्यवहार से सन्देह हो गया और उसे देखने पर शरीर में दाह लगने लगी। इधर राज्य से विडम्बना से छुटी पाकर मंत्री घर लौटा और घर को बंद देखकर द्वार खोलने के लिए द्वारपाल को आज्ञा दी। द्वारपाल तो नवीन मंत्री के बहकावे में आया हुआ था अतः उसने किसी भी प्रकार द्वार नहीं खोला। सर्वांगसुन्दरी को जब इस विवाद का पता लगा तो उसने समस्त शृंगार उतार कर प्रतिज्ञा की कि जहाँ तक सच्चे मंत्री का पता न लगे, वहाँ तक मेरे अन्नजल है ! वह स्थिर होकर बैठा रहा। मंत्री ने अपने घर में स्थान न पाकर कहीं अन्यत्र रात बिताई।

प्रातःकाल कृत्रिम मंत्री द्वारपाल से घर के दरवाजे बंद करवाकर राजसभा में गया। मंत्री गुणवल्लभ भी घर में प्रवेश न पाकर राजसभा में गया। सब लोग एक जैसे दो मंत्रियों को देखकर आश्चर्य करने लगे। राजा के समक्ष अपने को सच्चा मंत्री प्रमाणित करने का दोनों दावा कर रहे थे। राजा ने सोचा कि दिव्य करने से स्वतः दैवी न्याय हो जायगा ! पर दिव्य करने में सच्चे मंत्री की ही हानि थी क्योंकि वह के लिए तो यह कार्य कठिन था। मंत्री ने दिव्य करने अस्वीकार करके राजा से प्रार्थना करते कि जो हमारा विवाद मिटायेगा उसे मैं एक करोड़ द्रव्य दूँगा ! परशुराम ने यह न्याय करने का बीड़ा उठाया और उसे रात्रि में अर्धस्थित किया गया। प्रातःकाल के समय राजा ने कहा—'यदि तुम इनके विवाद को समाप्त न कर सके तो तुम्हें क्या दण्ड दिया जाय ?' परशुराम ने कहा कि प्राण लेना उचित समझें मुझे दण्ड दें।

राजसभा में परशुराम ने दोनों मंत्रियों को पास बैठा कर अपने किये हुए न्याय को मान्य करने का वचन लिया और एक कलश मंगवा कर कहा कि जो इस की नाल में से निकल जायगा वही सच्चा मंत्री है ! परशुराम के ऐसा कहते ही वह अपनी दिव्य शक्ति द्वारा तुरंत कलश की नाल में से निकल गया। परशुराम ने कहा—"यही भूत है, क्योंकि कलश की नाल में से निकलना मानव-शक्ति से बाहर की बात है !" परशुराम की बुद्धि के समक्ष धोखा खाकर अपने वचनानुसार दुखी होकर वह एकाएक अदृश्य हो गया। मंत्री गुणवल्लभ प्रसन्न होकर परशुराम को कोटि द्रव्य देने लगा तो दुष्ट चित्त वाले राजा के मन में चमत्कृत होकर भी द्रव्य देना मना करके कहा कि परदेशी लोग धूर्त होते हैं, यह इसी का रचा हुआ कपटजाल है ! राजा के इस कर्तव्य से सब लोग खिन्न हो गए, परशुराम सब लोगों की सहानुभूति सहित स्वस्थान लौटा।

राजा राजमद आभरण हजम करने के लिए परशुराम के छिद्र देखने लगा। उसने इस कार्य के लिए अपने विश्वस्त अनार्य सेवकों को सौंप दिया।

परशुराम के मार्ग में बहुमूल्य मुद्रारत्न आदि गिरा कर देखा तथा पर वह योगिराज की भांति परद्रव्य को धूलि-सदृश मानता हुआ आगे बढ़ गया। सेवकों से यह सबर पाकर राजा का हृदय पसीज गया। उसने परशुराम को सत्कार सहित बुलाकर आभरण सौंपने के सिवा अपने शरीर के आभरण भी भेंट कर दिये एवं मंत्री को बुलाकर उसके पास से वायदे के अनुसार कोटि द्रव्य भी दिला दिया। राजा से भरी सभा में प्रशंसित होकर वह घर आया और सेठ जयदेव की आज्ञा लेकर कामिश्वरपुर लौटा। पुत्र को घर आया देखकर पिता के हर्ष का वारापार न रहा। परशुराम ने राजा का आभरण व इन्द्रप्रस्थ के राजा से प्राप्त आभूषण पिता के समक्ष रखे व सेवक कार्त्तीसुत का सारा वृत्तान्त बतलाया। पिता प्रसन्नता-पूर्वक परशुराम को राजा के पास ले गया और उन्हें उसका आभरण संभलाते हुए आभरण चोरी होने और प्राप्त होने की सारी घटनाएं बतलाईं जिन्हें सुनकर राजा भी हर्षित हुआ।

कुटिराज ने उपर्युक्त कथा बतलाकर अर्थोपार्जन पर जोर दिया। देवकुमार मन ही मन चोरी न करने का निश्चय कर, वेश्या को चमत्कार दिखा कर गुरु महाराज से इस व्रत को ग्रहण करने का संकल्प कर अपने घर पहुँचा।

कुछ दिन बाद देवकुमार राजा और माता के सामने अपने पिता के पास वेणातट जाने का बहाना बना कर बाहर निकला। उसे एक उत्तम योगी मिला जिसने भक्ति से प्रसन्न होकर कुछ मांगने को कहा। देवकुमार ने उससे ऐसा मंत्र प्राप्त किया कि वह जिसे चाहे वही उसे मूल रूप में देख सके, अन्य नहीं। पर योगी ने यह स्पष्ट कह दिया कि तुम्हारा पुत्र तो तुम्हें मूल रूप में ही देखेगा! देवकुमार उस मंत्र को सिद्ध कर दो तीन दिन इधर उधर बिताकर अपने घर लौटा। उसने अपने संकल्पानुसार पहले पानी गुटिका से अन्य रूप धारण किया और दूसरे मंत्रबल से उसे कोई न देख सके, ऐसे रूप में एक पाया लेकर वेश्या के यहाँ गया। अक्का ने मक्खिमय पाया देखते ही उसे कमलश्री के पास भेज दिया। वह रात भर वहाँ रहा, प्रातःकाल भोजन का निमंत्रण अस्वीकार कर प्रतिदिन आना मंजूर कर देवकुमार अदृश्य होगया। वेश्या उसे सिद्ध-विद्याधर जैसा शक्तिशाली जानकर बड़ी प्रभावित हुई, अक्का ने उसे अपने वशवर्ती करने के लिए कमलश्री से कहा।

कमलश्री ने दूसरे दिन राजसभा में जाकर रत्नमय पाया दिखाया तो मन्त्री आदि सब स्तंभित होगये। देवकुमार ने कहा—"देव! गुफा के अंधकार को दीपशिखा दूर कर सकती है तो उससे सूर्य का महत्व घट नहीं जाता, सुई के छिद्र में सूत्र प्रवेश नहीं करने से सुई कभी सूत्रत्व से अधिक नहीं गिनी जाती, यदि हाथी अपनी सूंड से चींटी को नहीं पकड़ पाता तो हाथी से चींटी का वैशिष्ट्य नहीं माना जाता। अतः वेश्या ही पाये लाकर चोर को बतलादे तो उसे सत्यप्रतिज्ञ समझना चाहिए!" राजा ने वेश्या को कहा—,"तुम वर्ष भर में अवशिष्ट दो पाये चोर से ला देना।" कमलश्री अभिमान में फूली नहीं समाती थी।

अब देवकुमार प्रतिदिन रात्रि के समय कमलश्री के यहाँ जाता व प्रातःकाल अपने घर लौट आता। वह खाने-पीने व नींद लेने में बड़ा सतर्क रहता तथा गर्भस्थिति के दिनों को प्रयत्न पूर्वक छोड़ता। फिर भी संयोगवश कमलश्री गर्भवती होगई। देवकुमार यद्यपि उसे कुछ भी नहीं देता फिर भी वह उसके प्रति विशेष प्रीति वाली थी और उसने उसे राजा के पास अदृश्य दिखाने का निश्चय कर लिया था। गर्भकाल बीतने पर उसने पुत्र प्रसव किया, देवकुमार उसे अपना रूप दिखाना नहीं चाहता था। अतः उसने कमलश्री से कहकर पुत्र को मन्त्रित पाय के पास पालन करने की आज्ञा देते हुए कहा कि यदि ऐसा नहीं करोगी तो मैं

तुम्हारे यहाँ नहीं जाऊँगा ! फिर वेश्या के आग्रह से उसने शिशु को चलते प्रकृत रूप के प्रतिकूल मनोहर देखकर विलाया और वेश्या से हँसते हुए कहा कि यह मेरे जैसा नहीं है तो भी तुम मेरा पुत्र बतलाती हो ! वेश्या लज्जित होगई। फिर उसने कहा—"यदि तुम कल्याण चाहती हो तो कुछ वर्ष बच्चे को अन्यत्र रखो !" वेश्या ने उसकी बात मानकर उसे दूसरे घर में जाने का प्रबन्ध करके रख दिया। सारे नगर में यह बात फैल गई कि चोर से कमलश्री को पुत्र हुआ है। राजा को तो सारी खबर कमलश्री से बराबर मिलती ही रहती थी।

एक दिन राजसभा में देवकुमार ने राजा से कहा—"देव ! कमलश्री को प्रतिज्ञा के कारण चोर की बातें भुलादी गई या उसने चोर से पुत्रप्राप्ति करने प्रतिज्ञा पूर्ण करली ?" राजा ने अजित कमलश्री को आश्वासन देते हुए देवकुमार से कहा—"जो उस मात्र में अटल हो जाता हो, वह चोर ऐसे पकड़ा जाय ! एवं इतना शक्तिशाली होने पर भी वह दयालु स्त्रियों को लूट कर हानि नहीं पहुँचाता !" कमलश्री ने कहा—"इतना ही क्यों ? वह तो सर्व-शक्ति-सम्पन्न है ! कन्या पहुंचाने के पश्चात् तक निश्चय किये पर कम आश्चर्य की बात नहीं, पर उसने यह कार्य द्रव्य लोभ से न कर अपनी शक्ति का चमत्कार दिखाने के लिए ही किया प्रतीत होता है !" देवकुमार ने कहा—"राजन् ! रक्षकों कमलश्री को वह में कर लिया है जिससे वह चोर को अभय देने की प्रार्थना करती है !" राजा ने कहा—"कमलश्री ! यदि चोर मिल जायगा तो मैं उसे अभय-दान दूँगा, यह मेरा वचन है !" वेश्या प्रसन्न होकर अपने घर गई, देवकुमार ने भी अपने प्रति उसकी सच्ची प्रीति की प्रतीति प्राप्त की।

देवकुमार का पुत्र जब पाँच वर्ष का हुआ तो वह देशोदनय से दस वर्ष का लगता। उसने एक दिन माता से पूछा—"मेरे पिता कहाँ हैं ?" वेश्या ने उसे "पिता को तुम्हें कल दिखाऊँगी !" कहकर देवकुमार से पुत्र की जिज्ञासा व्यक्त की तो उसके रहस्य फूट जाने के भय से अपने पास आने की मना कर दी। कमलश्री ने कहा कि आप कैसे वज्र-हृदय के हैं, पुत्र की इतनी सी इच्छा भी पूर्ण नहीं करते।

देवकुमार जब कमलश्री की बात सुन कर मौन रहा तो उसने दासी को आज्ञा दी कि तुम प्रच्छन्न-रूप से पुत्र को लाकर एकान्त में रखना ताकि वह अपने पिता को देख सके। दासी ने ऐसा ही किया और उसे पूछा कि तुम अपनी माँ के पास जिसे देखते हो वे कैसे हैं ? उसने कहा—"स्वयं जैसे वर्ण वाले हैं !" दूसरे दिन भी उसने पिता को स्वयं जैसे वर्ण का बतलाया तो दासी ने निरूपण पूर्वक कमलश्री से कहा कि अपने सब इन्हें यथार्थ वर्ण के देखते हैं और यह बालक इन्हें स्वयं जैसे वर्ण का बतलाता है। बुद्धिमती वेश्या ने समझ लिया कि इसकी विमल कुरिणी विद्या पुत्र पर लागू नहीं पड़ती मालूम देती है इसी से वे पुत्र को अपने से दूर दूर रखते हैं। उसने पिता को यह पहिचान कराने के हेतु दासी को प्रतिदिन बालक को पिता के दर्शन कराने की आज्ञा दे दी।

एक दिन कमलश्री ने राजा से निवेदन किया कि यदि आप चोर को अभयदान दें तो मैं उसे प्राप्त करने का उपाय बतलाऊँ। राजा के स्वीकार करने पर कमलश्री ने कहा—"आप देवकुल के अन्दर लोगों को प्रविष्ट कराके एक ही द्वार से बाहर निकालें और मेरे पुत्र से अपने पिता को पहिचान करावें।" राजा ने जब ऐसी व्यवस्था की तो देवकुमार ने सोचा कि अवश्य ही वेश्या ने पुत्र को मेरी पहिचान करा दी है, अब तो जो आती है सो होगी, यहाँ तो मैं कीर्तिमंजरी के साथ बारह वर्ष रहा तो भी वह निःसन्तान रही और इसके अल्पकाल में ही पुत्र हो गया। सच है, पाप छिपाया नहीं छिपता।

राजाज्ञानुसार सभी लोग देवकुल में क्रमशः जाकर निकलने लगे। वेश्या-पुत्र को पूछा जाता था कि ये तुम्हारे पिता हैं? अनुक्रम से जब देवकुमार की बारी आई तो वह भी हृदय को मजबूत करके निकला तो राजा के पूछने पर बालक ने पहिचान कर कहा कि जिनदेव यही मेरे पिता हैं। राजा ने विस्मित होकर देवकुमार से पूछा कि क्या यह सत्य है और क्या ये सारे कारनामे तुम्हारे ही हैं? देवकुमार ने जब स्वीकार किया तो राजा उसके बुद्धि-बल से बड़ा प्रसन्न हुआ। इसने सारा वृत्तान्त बतलाते हुए कहा कि आपके पलंग के दो पाये आपके पास पहुंच गये एवं दो पाये मेरे पास सुरक्षित हैं जिन्हें आप ग्रहण कीजिये। अभिमान और लोभवश मनुष्य क्या नहीं कर सकता? मैं गुटिका के प्रयोग से रूप बदलने एवं अदृश्य हो जाने की शक्ति-सम्पन्न हूं अतः मेरा कोई पराभव नहीं कर सकता। राजा ने प्रसन्नता पूर्वक उसे अपने कोष की मंत्रियों में प्रधान नियुक्त किया। पुत्र के समझाने पर कमलश्री पुत्रसहित देवकुमार के यहां आकर रहने लगी। देवकुमार ने कमलश्री और सौभाग्यमंजरी को भी घर लाकर दोनों के साथ विधिवत् पाणिग्रहण महोत्सव किया।

अम्बदा गुणाकर सूरि के पधारने पर देवकुमार ने सपरिवार जैनधर्म स्वीकार किया। देवकुमार के बुद्धिवैभव से बड़े बड़े प्रबल शत्रु भी सूर राजा के वशवर्ती हो गये। राजा की कृपा से उसके घर सुख-समृद्धि का विस्तार हुआ और अनुक्रम से धर्म का आराधन कर वह सद्गति का भाजन हुआ।

जनसाधारण को नैतिक शिक्षा और धार्मिक प्रेरणा देने के लिए जैन विद्वानों ने लोक कथाओं को अपने प्रचार का माध्यम बनाया। उनमें कई कथाएं बड़ी ही रोचक हैं। बुद्धिचातुर्य और लौकिक चमत्कार का समावेश भी उनमें खूब हुआ है। ऐसी कथाओं में देवकुमार चरित्र भी एक है। संस्कृत के ५६२ अनुष्टुप् छंदों में इस चरित्र की रचना किसी जैन विद्वान् ने की है पर रचयिता ने इसमें अपना नाम नहीं दिया। संस्कृत से गुजराती अनुवाद कथा के जैन-धर्म-प्रचारक सभा भावनगर ने कामदेव नृप चरित्र के साथ सं० १९८२ में इसे प्रकाशित किया था। उसी का संशोधन करके यहां हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है।

देवकुमारचरित्र साधारणतया चोरी नहीं करने की शिक्षा देने के लिए रचा गया है इसमें कालीमुख व परशुराम की कथा दी गई है जिससे सहज ही में मानसपटल पर असर पड़ता है कि चोरी करने वाले की क्या गति होती है एवं सत्य बोलने वाले की अन्त में कैसे विजय होती है। यों देवकुमार की कथा में धार्मिक रंग नगण्य सा ही है, उसके प्रसंगों को देखते हुए यह विशुद्ध लोक-कथा सिद्ध होती है। कथा वर्षों प्राचीन काल से वंचित रही होगी, संभव है खोज करने पर किसी अन्य प्राचीन जैन-ग्रंथ में यह उपलब्ध हो जाय।

जैन कथा-ग्रन्थों का अध्ययन प्राचीन भारतीय लोक-कथाओं की जानकारी के लिए अति आवश्यक है, विद्वद्गण इस ओर प्रवृत्त होंगे।

(154) राजस्थानी 77-86 वेद
1018/818

दो पद्यानुकारी कृतियें

[भँवरलाल नाहटा] No=154

मानव की आंतरिक मनोदशा का वास्तविक चित्रण उसकी मातृभाषा द्वारा ही अधिक संभव है, क्योंकि वह प्रारंभकाल से इसी में सोचता समझता और विचारता है। भावों की शृंखला को वह जिसरूप में व्यक्त करता है वह पद्य या गद्यात्मक कृतियों के रूप में उपस्थित करता है। यह तो मानना ही होगा कि जबतक गद्य समुचित रूप से विकशित न हो तब तक पद्य की पूर्व भूमिका तैयार नहीं हो पाती। सुविस्तृत मनोभावों का व्यक्तिकरण यदि अत्यन्त सीमित शब्दों में करना होता है तब स्वाभाविक रूप से पद्य का सहारा लेना ही पड़ता है। पद्य मस्तिष्क में स्थायित्व भी प्राप्त कर लेता है। किसी भी देश या प्रान्त की भाषा और उनके साहित्य की मार्मिकताओं का गहरा अध्ययन करने के लिये गद्य-पद्यात्मक कृतियों का अध्ययन अत्यन्त अनिवार्य है। यद्यपि पद्यापेक्षया गद्य प्रचलित कम हो पाता है क्योंकि गद्य साहित्य स्मरण में कम रहता है जब कि पद्यों की स्मृति शिक्षित समाज ही क्यों निरक्षर शिरोमणियों के कण्ठो में भी परम्परा तक सुरक्षित रह सकी हैं और भविष्य में भी रह सकने में कोई संदेह को स्थान नहीं। परन्तु यह खास करके देखा जाता है कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में आज जो आमूल परिवर्तन हुआ है वह बहुत बड़ा है कारण कि पुरातन काल में निर्मित जितना भी साहित्य उपलब्ध है अधिकांशतः पद्य में ही है, गद्य की धारा उन दिनों वह अवश्य रही थी पर पद्यात्मक शैली से प्रभावित—सीमित थी, जब की आज पद्य में भावों का व्यक्तिकरण एक वर्ग विशेषकी वस्तु रह गयी है। यद्यपि मैं साहित्यका बहुत बड़ा मर्मज्ञ तो नहीं हूं पर इतना अवश्य मालूम होता है कि वर्त्तमान विद्वानों में लेखन के पीछे मनन कम हो पाता है, चिन्तन ही व्यापक भावों को एक सीमा में आबद्ध कर सकता है। यह मेरा अनुभव मुझे धोखा न देता हो तो कहना होगा कि वर्त्तमान गद्य विकाश और पद्यावरोध में छन्द ज्ञान का आंशिक अभाव भी यदि प्रधान नहीं पर गौण रूप से भी कारण हो तो असंभव नहीं।

अत्यन्त खेदकी बात है कि आज के संशोधन के युग में भी हिन्दी के विद्वान राजस्थानी भाषा की उपेक्षा किये हुए हैं जो हिन्दी के महल निर्माण में ईंटो का काम देती है। स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो तेरहवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी का गद्य पद्यात्मक साहित्य हिन्दी की जड़ को पल्लवित-पुष्पित करता रहा। मुझे यहां पर गद्यात्मक ग्रंथो के उल्लेख की ही विवक्षा है। जैनों ने इस क्षेत्र में आशातीत प्रगति कर भाषा-विज्ञान के मौलिक तत्व संपन्न निधि एकत्र की है। संग्रामसिंह रचित बाल शिक्षा (सं० १३३६) पृथ्वीचंद्र चरित्र सं०१४७८ में माणिक्यसुंदर सूरि रचित) षडावश्यकबालावबोध[1] (सं०१४११ तरुणप्रभाचार्य कृत) तपा गच्छ गुर्वावली[2] (सं०१४८२) आदि कुछ ग्रंथ प्राचीन गद्य पर प्रकाश डालते हैं एवं कुछ ताड़-पत्रीय पोथियों में जो कुछ नमूने लेखनकाल सहित मिले हैं जिनका लेखन समय —सं०१३२० -१३५८-१३६९-क्रमशः इस प्रकार है। बाद में भी इस धारा का प्रवाह चला जो टबा, बालावबोध आदि के रूपमें मिलता है। चर्चा विषयक ग्रंथ भी लौकिक भाषा में मिलते हैं यद्यपि इन ग्रंथों का चर्चा विषय भले ही जैन क्यों न हो पर भाषा की दृष्टि से इन्हें उपेक्षित वृत्ति से देखना गवेषक बुद्धि से शत्रुता पैदा करना है। मैं यहां पर ऐसी ही दो प्राचीन गद्यात्मक कृतियें दे रहा हूं जो विषय और भाषा की दृष्टि से महत्व रखती हैं।

उद्धरित गद्यों में जो "अहोशालक !" शब्द आये हैं वह कुछ खास अर्थ रखते है। बात यह है कि विवादित व्यक्ति की बौद्धिक परीक्षा अलग अलग ढंग से ली जाती थी। तब वह स्वाभाविक रूप से अपने कुल, राजा, देव, गुरु, कुलदेवी, आदि का वर्णन करता था, असंभव नहीं प्रस्तुतः गद्य भी इसी कारण निर्माण किया गया हो। प्रथम का प्रतिपाद्य विषय यह है कि जेसलमेर में विराजमान खरतरगच्छाचार्य श्री जिनसमुद्रसूरिजी को राव सातलने सम्मानपूर्वक अपनी राजधानी में बुलवाये। राजा का जो परिचय दिया गया है वह महत्वपूर्ण है एवं उस समय राजाओं की

---

१ इसकी सं० १४१२ की लिखित प्रति बीकानेर के बृहद् ज्ञानभंडार में है और कर्त्ता का प्राचीन चित्र—जो वस्त्र पर अंकित है—हमारे संग्रह में है।

२ हमारे संग्रहस्थ मूल प्रति के आधार से भारतीय विद्या भा०-१ अंक २ पृ०३३-४६ में प्रकाशित।

सर्वधर्मसमभाव नीति का परिचय भी मिलता है। सूरिजी का जोधपुर पधारने का समय सं०१५४८ वैशाख मास का है जिसकी प्रति हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

श्रीजिनसमुद्रसूरिजी—बाहड़मेर निवासी पारख देवासाह की धर्मपत्नी देवलदेवी की कुक्षि से सं० १५०६ में जन्मे, सं० १५२१ में दीक्षित हुए, सं० १५३० (?) माघ शुक्ला १३ के दिन पुंजपुर में जेसलमेर निवासी गठठिया श्रीमाल सं० सोनपाल कारित नंदि महोत्सव से गुरुवर्य श्रीजिनचंदसूरिजी ने आचार्य पद देकर स्वपद पर स्थापित किये। इन्होंने पंचनदी की साधना की और सं० १५५५ में अहमदाबाद में स्वर्गवासी हुए।

श्री शान्तिसागरसूरिजी खरतरगच्छ की आद्यपक्षीय शाखा के प्रमुख आचार्य थे। इन्होंने सं० १५५६ ज्ये० शु० ६ के दिन बीकानेर में उपर्युक्त श्रीजिनसमुद्रसूरि के पद पर श्री जिनहंससूरिजी को अभिषिक्त किये इस समय मन्त्रीश्वर कर्मसिंह ने छह पारोजी मुद्राएं व्यय की थी। दुष्काल के समय इनके प्रभाव से वृष्टि हुई थी। सं० १५६६ में इन्होंने अपने शिष्य श्रीजिनदेवसूरिजी को आचार्य पद दिया था।

द्विसाय कृति इन्हीं खरतरगच्छाचार्य श्री शांतिसागरसूरिजी के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालती है साथ ही साथ जोधपुर नरेश की वीरता एवं उदारताका उल्लेख महत्व रखता है। उन दिनों जैनों का राजनैतिक क्षेत्र में जो विकास था इसकी भी पूर्ति प्रस्तुतः कृति से होती है। उस समय के मानव जीवन की सात्विक कृतियों का अपने देवगुरु के प्रति जो आदर था उसे कितने गौरव पूर्वक स्मरण करने में वे लोग आनंद का अनुभव करते थे, इन कृतियों से वस्तुतः देखा जाय तो राजस्थान की सर्वथा उपेक्षित दिशा पर नवीन प्रकाश पड़ता है। अनुमान होता है कि भावनाओं के वशीभूत होकर साळे-बहनोई में परस्पर सात्विक भाव प्रधान गोष्ठी हुआ करती थी। संभव है यदि प्राचीन भण्डारों का अधिक अनुशीलन किया जाय या पुरातन गद्यात्मक कृतियें उपलब्ध होती है उनका केवल सामाजिक दृष्टि से ही मनन किया जाय तो निःसंदेह एतद्विषयक अधिक तात्त्व्य प्रकाश में आने की संभावना है। हमारे संग्रह में बड़गच्छ की एक ऐसी ही प्राचीन कृति संरक्षित है जिसमें दिल्ली नगर, जनाचार्य, मंडप, गोत्र, कुलदेवी-सुखाणीमाता आदि का सुंदर वर्णन है।

[१]

रायां वडउ श्री सातल राउ, जिणइ कियउ छइ मोटउ पसाउ।
खरतर तेड़ी दुयउ ज दीधउ, श्री गुरु अणाड़ी जगि जस लीधउ।

अहोशालक

तेरह साख राठउड़ां -तणी कहीजइ : तेह मांहे मोटउ श्री राठउड़ी रायां मांहे वडउ राउ श्री सातल, जिणइ मालवियां सुरताणतणउ दळ, भांजी कीधउ तळळ। खुदाइ-खुदाइ तोब तोब करतउ नाठउ, जातउ घणउ घाठउ, मालहा ला हिरण तणो परि त्राठउ। घणो गाळइ घाली बंदि छोडाड़ी, रेख रहाड़ी, खांडइ जइत्र अणाड़ी नव कोटी मारुयाड़ि भली गवहाड़ी। मोटउ साहस कीधउ, वडउ पराडउ पसीधउ, बंदी छोडाड़ी तउ इग्यारस तणउ पारणउ कीधउ। दिन दातार, रिण झूझार। वाचा अविचळ, कीट कटक धन सयळ। धूहांड़ा माळ नगमाळ बोरम चउंडा रिणमल कुळमंडण, श्रीयोधरायां नंदण। छाडो जसमाद राणो कूखि अवतार, यादव श्री वयरसल्लतणो धूड़ श्री फूलां राणो तणउ भरतार। नवकोटी मारुयाड़ि-तणउ नाइक, मँडोवर देस सुखदाइक। प्रतापी प्रचंड, आण अखंड। राजाधिराज, सारइ सव्व काज।

इसउ-अंक अम्हारउ ठाकुर श्री सातल-राउ, श्री खरतर संघ तेड़ी कीधउ पसाउ हिव विहला थाउ, वार म लाउ। आपणा गुरु गुणवंत श्री जिनसमुद्रसूरि याणउ, तरळ तुखार तेजो तुरंगम पलाणउ। जोड म जंडउ भली विहल खेड़उ, वारु करह पलाणहु।

राजाओं में राव सातल महान् है, जिसने महती कृपा पूर्वक खरतर गच्छ वालों को बुलाकर हुक्म दिया, गुरु श्री को बुलाकर जगत में यश का भागी हुआ।

अहो शालक ! राठौड़ों की तेरह शाखाएं कहलाती हैं। उनमें प्रधान श्री राठौड़ और राजाओं में महान् सातल राव है। जिसने मालवा के सुल्तान के दल को भग्न कर नष्ट किया। खुदा ! खुदा ! तोबा, तोबा ! करते भग कर जाते हुए बहुत दुखी हुआ। शिकारी द्वारा आक्रमित मृग की भाँति त्रस्त हुआ। उनके गाले में रोके हुए प्रचुर बंदी छुड़ाए, रेख रखी, तलवार के बल विजय प्राप्त कर नवकोटी मारवाड़ को खूब आनन्दित किया। जबरदस्त साहस किया, बड़ी कीर्ति फैली-प्रसिद्ध हुई। बंदियों को

ते थी राणी भटियाणी बोल वचन दीधा, घणा उद्यम कीधा, जग माहे जस लीधा, वळि परोहित दामाउत्र फळापुत्र मेळागर सधर त्रागाळा साथि दीधा, वळि साथइ खत्री वर वीर, भला, साखुला; रूड़ा राठउड़; भाटी सार, पमार, चखुड़ा चहुमाण, ईंदा घणउ सुजाण।

हिव महाजन सजन प्रधान पारिख देव गुरु राजि काजि खड़ा, तड़ा, चोपड़ा; निहुट नाहटा' थुल्ल घोरवाड़, वाफणा, अविचल आपणा; तातहड़, लूकड़; संखवाळेचा, घाड़ीवाहा; टाटिया, घणा पुण्य खाटिया; वरहड़िया नवलखा डोसी कांकरिया राजहंस लूणिया भणसाळी माल्हू सेठि राखेचा छाजहड़ खथड़ा सांड साख, मोथरा खरा, गणधर कटारिया रोहड़ भाटिया दरड़ा डागा गोळवछा लोढा भंडारी कोठारी मुंहता सेलहथ्थ बोहरा प्रमुख ओसवाळ श्रीमाळ महुत्तियाण, सर्व मिळी, मन -तणी रळी। श्रीजेसळमेर नगर हुंता रावळ श्री

छुड़ा कर एकादशी व्रत का पारणा किया। प्रतिदिन दाता, समराङ्गण का योद्धा, वचनों का सच्चा, दुर्ग-सेना और द्रव्य से सबल है। राव घूहड़ के वंशज माल, जगमाल, वीरम चूंडा, रिणमल का कुलमंडण श्री लोधा राव का अङ्गज हाडीराणी जसमादे की कुक्षि से अवतरित, यादव-भाटी (रावल) श्री वैरीसाल की पुत्री फूलां राणी का प्रियतम, नवकोटि मारवाड़ का अधिनायक, मण्डोवर देश को सुखदायक, प्रचण्ड प्रतापी और अखण्ड आज्ञा वाले राजाधिराज समस्त कार्यों को सिद्ध करते हैं।

ऐसे एकमात्र हमारे ठाकुर श्री सातल राव हैं, जिन्होंने कृपापूर्वक श्री खरतर गच्छीय संघ को निमंत्रित कर कहा—अब उतावले हो! विलम्ब मत करो! अपने गुणवान् गुरु श्रीजिनसमुद्रसूरि को बुला लाओ, तेजी और चपल घोड़ों पर पलाण (काठी) लगाओ; जोड़ी वाले भले बैलों को जोड़ कर अच्छी बेहली चलाओ, श्रेष्ठ जाति के ऊंटों को पलाणो।

इससे राणी भटियाणी ने वचन दिया, बहुत परिश्रम किया, जगत में यशोपार्जित किया। और दामावत पुरोहित फला पुत्र मेंलागर, सधर त्रागाला (१) साथ दिये और साथ में क्षत्रिय वीरवर श्रेष्ट सांखले, रूड़े राठौड़, भाटी, पंवार, चावड़ा, चौहान, इंदा (पड़िहार) आदि दिये जो सुज्ञ-विज्ञ थे।

अब सज्जन महाजनों में प्रधान पारख, देव गुरु और राज काज में तत्पर चोपड़ा,

देवीदास अहंकारदे राणी उरि हंस जेह-तणइ समरागर चोपड़उ वडो मंत्रीस सहु-को करइ प्रसंस। इसउ रावळ श्रीदेवीदास बीनत्री श्रीसंघ मनाव्री संवत पनर अठताळइ वैसाखि मासि भलइ पाखि भलइ वारि भलइ महुरति श्री जिन-समुद्र-सूरि गुरु आणिया, जगि जाणिया।

पहिलउ दामा-पुरोहित तणी नगरी श्री तिमरी आविया, पइसारा मोटइ मँडाण कराविया जांगी ढोल झालरि संखि वादित्र वजाविया, बिहुं पासे पटकूळ तणा नेजा लहकाविया, पगि-पगि खेला नचाविया, तणिया तोरण बंधाविया। गीत-गान कीधा पुन कळस सूहत्र सिरि दीधा, भला मंगळिक कीधा। घरि-घरि गूढी ऊछळी, श्री संघ तणा पूगी रळी। दाहोतरसौ बरसां तणी कांण भागी, पुण्य तणी वेली वाधिवा लागी। सर्व.... का भेळउ हुयउ।

अभंग जोड़ी वडा बँधव श्री सूजा सहित रावळ सातल वर्णवितउ सांभइ

निश्चल नाहटा, धुल्ल, धारवाड़, आपे में अविचल बाफणा, तातेड़, लूकड़, सखवाल्हेचा, धाड़ीवाल अति पुण्यवान टाटिया, बरदिया, नवलखा, डोसी, काकरिया, राजहंस-लूणिया, भणसाली, माल्हू, सेठी, राखेचा, छाजेड़, खुथड़ा, सावंडखा, बोथरा, गणधर, कटारिया रीहड़, भाटिया, दरड़ा, डागा गोलछा, लोढ़ा, भंडारी, कोठारी, मुहता, सेलत्थ, बोहरा आदि ओसवाल, श्रीमाल, महत्तिआण सब लोग उत्साह पूर्वक मिले। श्री जेसलमेर नगर में राणी अहंकार देवी के सुपुत्र रावल श्री देवीदास—जिनके लोक प्रशंसित चोपड़ा वंशीय मंत्रीश्वर समरागर प्रधान थे—को निवेदन कर तत्रस्थ संघ को मनाकर वि० सं० १५५८ वैशाख महीने में शुभवारमुहुर्त में विश्वविश्रुत गुरुवर्य श्रीजिनसमुद्र सूरि जी को लाये।

पहिले दामा पुरोहित की नगरी श्रीतिमरी में आये। बड़े समारोह पूर्वक प्रवेशोत्सव हुआ, विशाल जंगी—ढोल, झालर, संख, वाजित्र बजाये, उभय पक्षमें वस्त्र सजित नेजे चमकाये, पग पग पर नाटक-नृत्य खेल करवाये गये।

तणी तोरण बांधे गये, गीतगानहुए, सधवास्त्रियों के मस्तकोपरि पूर्ण कलश दिये, उत्तम मंगलिक किये। घर घर पताकाएं फहराने लगीं। श्रीसंघ के मनोरथ पूर्ण हुए। ११० वर्ष की काण भांगी। पुण्यवल्ली वृद्धिगत होने लगी। सब ·····के एकत्र हुए।

ज्येष्ठ बन्धु श्री सूजा के साथ रावल सातल वर्णन किये जाते सुशोभित हैं।

[२]

सेवामहे श्री-गुरु-शान्ति सागरम् ।
प्रबोधिता ऽशेष-सुरेश- नागरम् ॥
दोसी- कुळाभोरुह- वासरेश्वरम् ।
यशः-कळा- रंजित-मानवेश्वरम् ॥

अहोसालक !

अम्हारा गुरु खरतर-गच्छ-नायक, आनंद-दायक, श्री शांतिसागर सूरि वर्णिता सांभळि । किसा-अेक ते गुरु ? जोधपुर इसइ नामि करी महा-स्थान अभिनव-देव-लोक समान । रिद्धि-तणउ निधान, धनवंत लोके करी प्रधान । तिहां ....रायांराय जोधराय मल्हार कमधज-कुल-शृंगार -सार रूपि करी इंद्रावतार श्री सूर्यमल्लराय उदार । तेह-कइ जयवंतउ श्रीबाघउ कुमार धरतउ चउरासियां-नापरिवार वांका वीर पधारणहार, छत्रीस दंडायुध फोरवइ अपार संग्रामांगणि जय तूआर । जेह-नइ झूझार अनेक अनेक असवार । दीसइ चउंडा-पोत्रा नापरिवार । तेह नइ राजि, मोटइ काजि; जाणिता, पराणिता, लोके वखाणिता, संघवी श्री जिणराज ठाकुर । गुण-तणा आकर, करणी कुबेर, धीरिमि मेरु ।

तीअे आपणा गुरु मेड़ितइ अडपळया आणी मोटा माहस आणी अमिय समाणी माधुरी वाणि, इणि परि बोलया —श्रीकर्णराइ रिणमल्लाणी, तइं कंपाव्या सेन सुरताणी ; तइं हंस-नइ परि निर्वेड्या दूध नइ पाणी, मुंकाव्या गुरु करि कहाणी । अे वात सांभळी हरख्या श्रीकरण, अधिकउ अधिकउ लहतउ वर्ण, जिसउ हुवइ सुरहउ साढ सोल्ल सुवर्ण, जाणे करि दान सुणि उदयउ अभिनव कर्ण । पहिली परीछइ लोक नो चासमास, जाणइ गुरु रह्या मेड़तइ चउदह मास । पाम्यउ उल्लास, लोक-नइ उपजावइ वेसास छांडावा-नो आणइ आस, दूरि करइ उपहास ।

अहो सालक ! हमारे गुरु खरतरगच्छ नायक आनंद प्रदायक श्री शांतिसागरसूरि जी का वर्णन सुनो ! कैसे हैं वे गुरु ? नूतन स्वर्गपुरी के सदृश जोधपुर नामक महानगर है । रिद्धि का खजाना और धनिक लोगों का प्राधान्य है । वहां राजाधिराज जोधा का पुत्र कमधजवंश मंडन, रूप में इन्द्र जैसा, राजा श्री सूर्यमल बड़ा दयालु है । चिरंजी श्री बाघा कुमार उसके राजकुमार है जिसके ८४ (रानियों ?) का परिवार है । जिसके अनेकों बांके वीर छत्तीस दण्डायुध कलास्फुरित रणाङ्गण विजेता योद्धा-सवार हैं । राव चूंडा के पोतों का परिवार प्रदर्शित है । उसके राज्य में उदयपद प्रतिष्ठित, ज्ञानवान, प्रामाणिक, लोक प्रशंसित संघपति ठाकुर जिणराज गुणों का भंडार, संग्रह करने में कुबेर और धैर्य में सुमेरु के सदृश है ।

मांड्यउ रूडउ उपाय, भलउ मनाव्यउ संघ समुदाय। इम वीनव्यउ श्री दूदउ राइ, ताहरउ पसरयउ जगि जस-वाइ, तउं उदयउ सुर-तरु-सछाय। नव पल्लव काय। तउं हींदुअउ सुरताण, ताहरउ अचूक बाण, तइं मोड़्या मूंछाळा वीर माण, तइं मनाव्या मीरमलिक आण, तइं भांज्या वइरी-प्राण, तउं राठउड़ां मांहे आगेवाण तउं आपइ करह-केकाण, तइं पजाया पठाण, तइं छुडाव्या तोरक्का बंदीवाण, तइं फेड़्या मयणां ना ठाण, तइं लीधा सइंभरि-ना दाण, तइं नमाव्या कछवांह-निरवाण, तइं कंपाव्या उच्च मुळताण। आपइणी आपणइ हीयइइ जागि चार चवाउइ तणे वचने म लागि, हंस तणा गुण न लहसि कागि, गुरु कन्हा दंड म मागि, तउं मोटउ हूयउ अम्हारइ भागि, साम न लागइ सोनइ नइ सागि, तउं चडियउ मोटइ सोभागि, तइं सीमाड़ा कीधा झाड़ि झाड़ि, अम्हे छउ तुम्हारी वाड़ि, अम्ह नइ हाथ थकी म छाड़ि, पूरि अम्हारी रहाड़ि, घणउ भली भवाड़ि, अं नवकोटी मारुआड़ि, श्री संघ-नो माम म पाड़ि, गुरु अडखलो लाज म लगाड़ि, अम्हे पडखउ तुम्हारा आदेश आड़ि।

इसी परि श्रीकर्ण दूदा आगलि जाई, हरखित थाई रूड़ी बुद्धि उपाई, कहवा लागउ लाई, अम्हे ताहरा ज खाई, राखि, अम्हां-सउं सगाई, आचारिज उरदी आपि। रिसि-वर म संतापि, अम्ह नइं मोटा करि थापि, सकल श्रावक-नी आरति कापि।

उसने अपने गुरु को सम्मान पूर्वक मेड़ता बुलाये। बड़े साहस के साथ अमृत तुल्य मधुरवाणी से इस प्रकार निवेदन किया—हे रिणमल के नंदन श्री कर्णराव तुमने सुलतान की सेना को कम्पित किया, हंसवत् क्षीर नीर का निवेड़ा किया। गुरु को छुड़ाकर बात रखी! यह बात सुन श्रीकर्ण सुहागा के संग से अधिक निखरे वर्ण वाले सादे सोलह आनी स्वर्ण के सदृश हर्षित हुए, मानो नया कर्ण दानी उदित हुआ हो! पहिले लोगों का चाखवास (वस्तु स्थिति) परीक्षा की, गुरु मेड़ता में १४ मास रहे आनंदोल्लास पाया लोगों में विश्वास उत्पन्न किया, उपहास निराकृत कर छुड़ाने की आशा की (?) श्रेष्ठ उपाय किया, संघ समुदाय को मनाया; राव दूदाजी इस प्रकार प्रार्थना की—तुम्हारा यशोवाद प्रसरित हुआ, तुम छायादार कल्पतरु उत्पन्न हुए, नवपल्लवित शरीरवाले हिन्दुओं के सुलतान तुम्हारा बाण अमोघ है, तुमने मूंछों वाले वीरों का मान मर्दन किया, तुमने मीर मल्लिकों से आण मनायी तुमने शत्रुओं के प्राण नष्ट किये, तुम राठौड़ों में अग्रगण्य हो, तुम घोड़ा—ऊंट दान करते हो, तुमने पठानों को खूब छकाया, तुमने तुरकों के बन्दीवानों

इम कही कहावी, दूजणसल्ल रड़ष मनावी, गुरु छोडावी, सोह लहावी रेह रहावी, गुरु आणता पगि-पगि पइसारी कीजइ, पान तंबोल दान दीजइ, सुजस लहीजइ, सोभाग लीजइ, मागता संतोखीजइ, क्रमि-क्रमि जोध-नयर ढूकड़ा गुरु अणाव्या, सं० जिणइ ठाकुरि प्रवेसक महोत्सव कराव्या, तणिया तोरण बंधाव्या, बंदरवालि ठाम-ठाम सोहाव्या, व्यवहारिया साम्हा इणि परि वांदिवा आव्या: कुण-ही जोतस्या वहिलइं कल्होड़ा, कुण ही पल्लाण्या आसण होड़ा, केइ करहि चढी धाइ दहे दिसि द्रोड़ा, केइं मुखि माणइ तंबोल-लवंग-डोडा। अधिकी अधिकेरी, द्रमको मदन-भेरी, घुमघमी नफेरी, मेलावे रूंधी सेरी, सूड़ी-नी परि इं गाढी रड़ा दीसइ ऊंची ऊड़ी आकासि गूड़ी।

मिळिया ओसवाल, श्रीमाळ, ढिल्लीवाळ, खंडेलवाळ, गुजराती, मेवाती, जेसळमेरा, अजमेरा, भटनेरा, सिंधू बहुतेरा, गोढवाड़ा, मेवाड़ा, मारुआड़ा, महेवेचा, कोटड़ेचा, पाटणेचा, माल्या सोवन पाट, धवळया मंदिर हाट, फूल

को मुक्त कराये, तुमने मीनों के अड्डे को नष्ट किया, तुमने सांभर की जकातली, तुमने कछवाहा और निरवाण सरदारों को नमाये। उचनगर और मुलतान को कम्पित किया, अपने आप हृदय से जागो ? चुगल लबाड़ों के कथन पर मत चलो, हंस के गुण कौओ में नही मिलते, गुरु के पास दण्ड मत मांगो, तुम हमारे भाग्यसे बढ़े हुए हो, सोने को काट नहीं लगाता, तुम बड़े सौभाग्य से उन्नत हुए हो, तुमने सीमाओंपर झाड़ी ही झाड़ किये है—हम तुम्हारी बाड़ (रक्षक या वाटिका) हैं, हमें हाथसे मत छोड़ो (गवांओ) हमारे मनोरथ पूर्ण करो, बहुत अच्छा.....यह नयकोटि मारवाड़ है श्री संघ की भावना को मत गिराओ, गुरु को अटका (?) कलंक मत लगाओ, हम तुम्हारे आदेश का विरोध करते हैं।

इस प्रकार श्री कर्ण दूदा के सम्मुख सहर्ष जाकर उत्पन्न सद्बुद्धि से कहने लगा· हम तुम्हारा ही खाते हैं, हमारे साथ सम्बन्ध रखो, आचार्य को इधर सौंपो, ऋषिराज को कष्ट मत दो, हमारा सगान रखो, समस्त श्रावकों की चिन्ता दूर करो।

इस प्रकार कह सुन कर दूजणसल्ल ? (दूदा) को अच्छी तरह मनाया, गुरु को छुड़ाये, शोभा पायी, रेख रखी। गुरु को लाते हुए पग पग प्रवेशोत्सव किया, पान सुपारी बांट कर सुयश सौभाग्य लिया, याचकों को सन्तुष्ट किया। क्रमशः जोधपुर के निकट गुरु श्री को लाये। सं० जिणराज ठाकुर ने प्रवेशोत्सव कराया, तणी तोरण बंधाये गये, स्थान स्थान पर बंदरवालें सुशोभित की। व्यापारी लोग वंदन करने इसप्रकार

विखेर्‍या वाट, अेकन हुआ महाजन-तणा घाट, डमक्या ढोल-नीसाण, ऊमटिया खरतर-ना खुरसाण, ऊछव करइ जिणराज ठाकुर सुजाण। वाजिवा लागा तूर, ऊपना आणंद-पूर, भट्ट थट्ट लहइं कूर कपूर; याचक आपइ आसीस लहइं बोल बंभीस, न करइ लगाइ रीस, पूगी मनह जगीस, पूत कळस ले नारी आवइ, धवळ-मंगळ गावइ, मोतिअे गुरु वधावइ, ऊपरि अति बहुमूल, ऊतारइ सोवन-फूल, ऊछाळइ चावळ, फूआ वेळाँवळ, जाणिवा लागा रावळ, जिसा गयणि गाजइ बादळ, तिसा रळी रळी रणकइ गादळ, चउपट चउसाळ बाजइ ताळ कंसाळ।

इणि परि आव्या श्रीगुरु जोधपुर नगरि निवासि, आपणइसासिकासि पुण्य-तणइ प्रकासि, गुरु रहिण लागा सुखि चउमासि। अहोसालक इसा-अेक अम्हारा गुरु वर्णता सदा सोहइ।

सामने आये—किसीने वहली के कल्होड़िये (बैल) जोड़े, किसी ने शुद्ध स्पर्द्धा पूर्वक आसण पलाणे, कई लोग ऊटों पर चढ़कर दसो दिश दौड़ लगाने लगे। कई लोग मुख से खूब पान सुपारी, लौंग, इलायची, आदि चबाने लगे। भेरी-वाजित्र धमकने लगी, नफेरी का धम धमाट गूंजने लगा, लोगों के जमाव से वीथिकाएं आरुद्ध हो गयी। तोते की तरह आकाश में उड़तीहुई पताकाएं बहुत भली मालूम देती थी।

ओसवाल, श्रीमाल, दिल्लीवाल, गुजराती, मेवाती, जेसलमेरी, अजमेरी, भटनेरा, सिंधुदेशीय, गोटवाली, मेवाड़ी; महेवेचा, कोटड़ेचा, पाटणेचा, लोग मिले। सुनहरे पाटे बिछे, मंदिर -मकानों और हाटों की पुताई हुई, रास्ते में पुष्प बिखेरे गये। महाजनों का झुण्ड मिला, ढोल निसाण बजे, खरतरों का सितारा चमका। सुशानी जिणराज ठाकुर उत्सव करता है। तूर-वाजित्र बजने लगे, आनंद की लहरें छा गयीं, भट्टगण कर्पूरादि से सम्मानित हुए। याचक लोग आशीर्वाद देते थे। .....कोई कष्ट नहीं होता। मनकी आशाफली, मस्तकोपरि पूर्ण कलश लेकर स्त्रियें आती है, और धवल मंगल-गीत गाती हैं, गुरु जी को मोतियों से वधाती हैं, बहुमूल्य स्वर्णफूल उतारती हैं, अक्षत उछालती हैं .....राजभवन पर्यन्त कीर्ति विस्तृत हुये। गर्जित मेघ वत् आकाश मे बादलों का धींकार गूंजता था, ताल कंसाल की ध्वनि चतुर्दिग् व्याप्त थी। इस प्रकार श्री जोधपुर नगर निवास आये। सुखसमाधि-पूर्वक अपने पुण्य के प्रकाश से गुरुदेव सुखसे चातुर्मास बिताने लगे। अहोसालक! हमारे ऐसे गुरु वर्णन करते सदा सुशोभित हैं।

(155) वरदा वे० २५-२४ तक

—: दामन्नक कथा :—

ले० श्री भंवरलाल नाहटा

No - 155

राजस्थानी का जैन-साहित्य भारतीय लोक-कथाओं का बहुत बड़ा भण्डार है। मौखिक रूप से तो हजारों छोटी बड़ी कथायें प्रचलित हैं ही पर लिखित रूप में भी हजारों कथायें प्राप्त हैं। जैनेतर लेखकों ने तो इन्हें लिपिबद्ध करने का काम १८-१९ वीं शताब्दी में ही अधिक किया पर जैन लेखकों ने तो काफी प्राचीन समय से इन कथाओं को अपने ग्रन्थों में स्थान दिया। प्राकृत, संस्कृत के अनेक मौलिक एवं टीका-ग्रन्थों में लोक-कथाओं को सम्मिलित किया ही गया है परन्तु राजस्थानी गद्य और पद्य में भी १५ वीं शताब्दी से जैन विद्वान इन्हें निरन्तर लिखते रहे हैं। एक-एक कथा के सम्बन्ध में कई राजस्थानी काव्य लिखे गये हैं। ऐसी ही एक दामन्नक कथा का संक्षिप्त सार इस लेख में प्रकाशित किया जा रहा है, जो काफी प्राचीन है यह कथा प्राकृत, संस्कृत ग्रन्थों से होती हुई राजस्थानी काव्य के रूप में परिणित हुई है। तपागच्छ और खरतर-गच्छ के दो-दो कवियों ने १७ वीं शताब्दी में इस कथा को लेकर ४ रास या चौपाई ग्रंथों की रचना की है।

कविवर उदयरत्न के उल्लेखानुसार दामन्नक कथा का सबसे प्राचीन आधार वसुदेव-हिन्डी नामक प्राकृत ग्रन्थ है, जो ५ वीं शताब्दी की रचना है। संस्कृत में वृन्दावृत्ति और उपदेशप्रासाद नामक ग्रन्थों में यह कथा पाई जाती है। उदयरत्न ने दामन्नक रास वृन्दावृत्ति को देखकर बनाया है:—

रचना रचूं रसदायिनी, दामन्नकनी दिल धारि,
कुण दे दामन्नक किहां हयो, मूल थकी धरी मोद,
चरित्र कहूं चित देई ने, सहु सुणयो सुविनोद।
इह-लौकीक फल ऊपरि, वसुदेव-हींडे विस्तार,
दृष्टान्त छे धम्मिल्लनो, जिणें हुई अध-निस्तार।
परभव फल ऊपरि प्रगट, इहां कहिशुं अवदान,
दामन्नकनो अति दीपतो, ते वंदावृत्ति विख्यात।

वेदास्मृति विलोकीनो, अधिकार कह्यो में एह रे,
अहीक कहयो हुई अज्ञाने मिथ्या दुष्कृत हुयो तेहरे ॥८॥

राजस्थानी-गुजराती में इस कथा को रास के रूप में रचने का श्रेय तपागच्छीय रत्नविमल को है। संवत् १६२३ के पहले खम्भात में उसने दामन्नक-रास १४८ पद्यों में बनाया। जीवदया के माहात्म्य को बतलाने के लिये इस कथा को कवि ने काव्यबद्ध किया है। इसके बाद खरतरगच्छीय कवि ज्ञानहर्ष ने संवत १७१० के मिगसर वदि ६ को नोमा में दामन्नक-चौपाई की रचना की। उसने भी जीव न मारने के नियम (मूंस-प्रतिज्ञा) लेने से किस प्रकार सुख प्राप्त होता है, इसके दृष्टान्त में दामन्नक कथा को राजस्थानी में पद्यबद्ध किया है। ६ ढाल और ६२ पद्यों की इस कथा की ५ पत्रों की प्रति हमारे संग्रह में है। उसी चौपई का संक्षिप्त कथासार आगे दिया जा रहा है।

ज्ञानहर्ष के बाद खरतरगच्छ के कवि राजसार के शिष्य ज्ञानधर्म ने संवत् १७२५ की विजयादशमी को दामन्नक-चौपई की रचना की, जिसकी ५ पत्रों की प्रति आचार्य शाखा भण्डार, बीकानेर में है। तदनन्तर तपागच्छीय कविवर उदयरत्न ने संवत् १७८२ की आसोज वदि ११, बुधवार, पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में अहमदाबाद में रहते हुये दामन्नक-रास बनाया। उसी समय की कवि की स्वयं लिखी हुई ६ पत्रों की प्रति खेड़ा भण्डार में है। उसमें १८३ गाथा, श्लोक-परिमाण २२५ श्लोकों का है।

जैसा कि आगे दी जाने वाली कथा को पढ़ने पर पाठक अनुभव करेंगे कि मूलतः यह एक लोक कथा ही है। चन्द्रहास की कथा के समान इसमें भी नायक को विष देकर मारने का कार्यक्रम बनता है परन्तु पुण्य के उदय से विषा के साथ उसका विवाह हो जाता है। यह कथानक-रूढ़ि और भी कई लोककथाओं में पाई जाती है।

दामन्नक की कथा छोटी सी है। जीव-हिंसा न करने का नियम लेने और दृढ़ता पूर्वक उसका पालन करने से दामन्नक को किस प्रकार सुख प्राप्त हुआ, यह बतलाने के लिये पहले उसके पूर्वभव का वृतान्त जोड़ दिया गया है। दामन्नक को मरवाने का प्रयत्न करने वाले सागर सेठ को अपने पुत्र से हाथ धोना पड़ा; यह वृतान्त भी बहुत ही प्रबोधक है। जो दूसरे का बुरा चाहता है, उसका परिणाम अपने बुरा होने के रूप में ही होता है। नैतिक और धार्मिक प्रेरणा ऐसी कथाओं से बहुत ही अच्छे रूप में मिलती है।

पूर्वजन्म वृत्तान्तः— गजपुर नगर में राजा जितशत्रु राज्य करते थे, जिनकी पटरानी का नाम धारणी था। उस नगरी में सुनंद नामक कुलपुत्र रहता था, जिसके जिनदास अभिन्न मित्र था। इन दोनों का बचपन का खेल कूद और पाठशाला में पठन साथ साथ ही हुआ था। परस्पर मैत्री इतनी थी कि मानों एक जीव और दो काया हों। दोनों का प्रेम निश्छल और निःस्वार्थ होने से दिनों दिन बढ़ता ही जाता था।

एक बार कंचनाचार्य महाराज विचरण करते हुए गजपुर नगर में आये। दोनों मित्र गुरु महाराज को वन्दनार्थ गये और उनकी अमृतोपम मधुर और कल्याणकारिणी धर्म-देशना श्रवण की। उनके उपदेशों में अहिंसा धर्म की प्रधानता थी, जिससे प्रभावित होकर सुनंद ने जीवदया पालन का नियम ग्रहण किया और अपने व्रत का चारुतया पालन करता हुआ वह काल निर्गमन करने लगा। भवितव्यतावश देश में भयंकर दुष्काल पड़ा और लोग भूख के मारे भक्ष्याभक्ष्य का विवेक भूलकर मांसाहारी हो गये। सुनन्द की स्त्री ने उदरभरण के निमित्त नदी से मत्स्य पकड़ कर लाने को प्रेरित किया। सुनन्द ने कहा, "मैंने गुरु महाराज के पास जीवहत्या का त्याग कर दिया है अतः मैं अपनी प्रतिज्ञा का हर हालत में पालन करूंगा।" स्त्री ने कहा— "अरे पंगु, तुम्हारे जो पीछे लगे हैं उनकी क्या गति होगी? मुंह के कथन पर चल कर अपने बाल बच्चों को भूख से मत मारो।"

स्त्री के उपर्युक्त वचनों के कारण वेमन से सुनन्द जाल लेकर नदी में गया और जाल में आये हुए तड़फते हुए मच्छों को देखकर उसने जाल को छुरी से काट फेंका। उसने घर आकर स्त्री से कहा— "मेरे जाल में मत्स्य आते नहीं, क्या करूं?" उसका कथन सुन कर सांपिन की भांति विकराल होकर यद्वा तद्वा बकती हुई स्त्री को देखकर उसने अपने पैर में कुठार का वार किया और वेदना पूर्वक प्राणत्याग कर वह परलोक प्राप्त हुआ।

दामन्नक की कथाः— मगधदेश के राजगृह नगर में राजा नरवर्म और जय श्री रानी राज्य करते थे उनके राज्य में मणिकार सेठ रहता था, जिसकी भार्या सुजसा की कुक्षि में सुनन्द का जीव पुत्र-रूप में जन्मा। सेठ ने स्वप्नानुसार बालक का नाम दामन्नक रखा। जब वह आठ वर्ष का हुआ तो मृगी रोग के प्रकोप होने पर सेठ के घर के सब रोगाक्रान्त होकर मर गये। लोगों ने सेठ के घर के द्वार बंद कर दिये। बालक दामन्नक आक्रंद-पुकार करता हुआ घर की दीवाल फोड़कर बाहर निकला और पड़ौसी सागरपोत

व्यवहारिक के यहां जाकर उसने शरण ली। सेठ ने उसे अपने यहां रख लिया। एक दिन ज्ञानी मुनिराज आहार के निमित्त घूमते हुए सेठ के यहां आये। उन्होंने निकलते हुए बालक के देह-लक्षण देख कर कहा— "यह इस घर का स्वामी होगा।" सेठ के कानों में ये शब्द किसी प्रकार पड़ गए और उसने इसे मरवाने का निश्चय कर लिया।

सेठ ने अपना कष्टक दूर करने के लिए खिंगल नामक चाण्डाल को बुलाया और गोकुल में काम पर जाने के बहाने बालक को चाण्डाल के साथ कर दिया। खिंगाल बालक को लेकर वन में आया और खड्ग निकाल कर मारने को प्रस्तुत हुआ। बालक ने कहा—"मुझे मारकर पाप का भार क्यों बाँधते हो? मेरे आभूषण लेकर मुझे छोड़दो।" बालक को बिलबिलाते देख कर चाण्डाल को दया आगई और उसकी चिट्टी अंगुली छेद कर उसे गोकुल में भगा दिया। नंद ने उसे रोते देख कर अपने घर में बुलाया और शुभ लक्षण वाला मनोहर बालक जान कर उसे अपने पुत्र-रूप में स्थापित कर दिया। चाण्डाल ने अंगुली दिखाकर सेठ से इनाम प्राप्त कर ली।

एक दिन सागरदत्त अच्छी गाय देखने के लिए गोकुल में नंद के यहां गया और वहां उस बालक को देख कर पूछा—"यह कौन है? नंद ने कहा— "दैवकृपा से प्राप्त यह मेरा बालक है।" सेठ ने कहा—"यह लड़का तो तरुण होगया है, इसे राजगृह भेजकर मेरा एक काम तो करवादो। नंद ने कहा— "इसे पत्र लिखकर दीजिये। यह काम करके कल लौट आवेगा।" सेठ ने उसे पत्र लिख कर दिया। दामन्नक उस पत्र को लेकर राजगृह गया और सन्ध्या हो जाने से किसी देवकुल में जाकर सो गया। प्रातः-काल विषा नामक साहूकार की पुत्री कामदेव को नमस्कार करने आई और दामन्नक के मस्तक पर पत्र देख कर वह उसके पास आई और पत्र निकाल कर पढ़ने लगी—"स्वपुत्र समुद्रदत्त योग्य सागर साहू लिखित समाचार यह है कि जो पुरुष तुम्हारे पास भेज रहा हूं, उसे तुरंत विष दे देना।"

विषा ने पत्र पढ़ कर विष शब्द के आगे आकारान्त मात्रा लगादी और उसे उठाकर अपने घर भेज दिया। कामदेव की पूजाकर प्रसन्नतापूर्वक विषा घर आई। समुद्रदत्त ने पत्र पढ़ कर ज्योतिषी को बुलाया और उसी दिन लग्न-मुहूर्त्त निकलने पर दामन्नककुमार और विषा का पाणिग्रहण-संस्कार बड़ी धूमधाम से कर दिया। सागर सेठ ने जब यह वृत्तान्त सुना तो उसने घर आकर खिंगल चांडाल को बुलाया और रुष्ट होकर कहा— "पापी तुमने बिना काम किए ही मेरे से धन ले लिया, खिंगल ने कहा

"मेरी भूल हो गई, आप अब जो आज्ञा दें, अविलम्ब कर दूंगा।" सेठ ने कहा—मैं आज शाम को देवी के मन्दिर में जिस मनुष्य को भेजूं उसका काम तमाम कर देना।" सेठ की आज्ञापालन के लिए चाण्डाल चला गया।

सेठ ने जँवाई को फल देकर सन्ध्या समय कहा, "देवी के मन्दिर में अकेले जाकर जात्रा कर आओ।" दामन्नक फल लेकर जा रहा था तो मार्ग में उसे समुद्रदत्त मिल गया। उसने कहा—"आप कहां जावेंगे मुझे फल दीजिये मैं अभी जा आता हूं।" समुद्रदत्त फल लेकर अकेला देवी के मन्दिर में ज्यों ही प्रविष्ट हुआ, चाण्डाल ने खड्गप्रहार से उसका शिरोच्छेदन कर डाला। सागर सेठ को अपने पाप का परिणाम तुरंत मिल गया। जब उसने पुत्रहत्या की बात सुनी तो तुरंत उसके प्राण उड़ गए। इस प्रकार उसका जामाता दामन्नक स्वाभाविक रूप से सेठ का उत्तराधिकारी होकर गृहस्वामी बन गया।

राजा नरवर्म्म ने जब दामन्नक की बात सुनी तो उसे बुलाकर सेठ पदवी दी और उसके पिता के घर के ताले खुलवाकर उसके अधिकार में देदिया। दामन्नक सब प्रकार से सुखी हो गया। पूर्वभव में उसने जीवदया व्रत का पालन किया, जिसके प्रताप से उसे सुख संपत्ति प्राप्त हुई। दामन्नक सेठ जिन धर्म में विशेष अनुरक्त होकर उत्साह पूर्वक सुपात्र दान देता हुआ धर्म ध्यान करने लगा।

खरतरगच्छीय कवि ज्ञानहर्ष की जिस दामन्नक-चौपाई का कथासार ऊपर दिया गया है, उसके प्रारम्भ और अन्त के कुछ पद्य दिये जा रहे हैं:—

परम पुरुष श्री परम गुरु, परमेसर प्रभु पास। पुरसादाणी प्रणमतां, होवइ लील विलास।१
वीर जिनेसर जगतगुरु, सासन केरउ ईस। समरंतां आणंद घणउ, होवइ विसवावीस।२
श्री जिनवर मुख वासिनी, समरु त्रिकरण सुद्ध। संबंध कहूं दामन तणउ, जह मुझ निरमल बुद्ध।
जीव तणा वध करणउ, सुंस लीयउ गुर पास। तिणथी सुख लाधा घणा, अविचल लील विलास।३
संवत रे संवत सतर दाहो तरइ रे, हां रे, मगसिर वदि तिथ नउम संबंध कहयउ रे।
मुझ मन रे ए गुण गातां गह गह्यउ रे। हां रे।४। श्री दा. ॥ .....
श्री खरतर रे वड़ खरतर गछ सेहरउ रे। हां रे।
रीहड़ वंस विख्यात सब गछ मइ वड़ रे। श्री जिणरे० ॥ श्री जिणचन्द सुरी सुद्ध रे।५
तसु शिष्य रे तसु शिष्य पाठक राजजी रे, सुमति शेखर वड सत्थु गुण निलइरे। एस वाचयां रे।
धस वाचयां कुसलउ लिखउ रे ॥ ६ श्री दा. ॥
तसु शिष्य रे तसु शिष्य ग्यांनहरख वदइ रे, हां रे नटखई गाम मझार चउमास रहइरे।
संबंध रे संबंध कहयउ संव आग्रहइ रे।७ श्री०। इति श्री दामन्नक चउपई सम्पूर्ण
श्राविका सज्जनां पठनार्थं ॥

(156) सम्पेक्षक पत्रिका - ५०१९-१०५८१

1093/493

No - 156

दीवान दौलत खाँ रचित हिन्दी वैद्यक ग्रन्थ

श्री अगरचंद नाहटा

भारत की आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति बहुत वैज्ञानिक एवं देश के लिए परम हितकर है। भारतीय मनीषियों की यह एक महती देन है। यहीं की उत्पन्न जड़ी बूटियों व वनौषधियों के गुण-दोष एवं रोगों के निदान एवं परिहार के उपाय शोध कर उन्होंने मानव जगत ही नहीं पशु जगत की भी महान सेवा की है। हाथी एवं घोड़े मध्यकालीन युद्धों के प्रधान सहायक पशु थे, अतः उनका संरक्षण बड़े यत्न से किया जाता था, उनके रोगों के निवारणार्थ गज एवं अश्व चिकित्सा के शालिहोत्र-ग्रन्थ[1] काफी प्राचीन एवं एक स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में उपलब्ध हैं। वैसे आयुर्वेदिक मानव चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थ तो सैकड़ों की संख्या में उपलब्ध हैं जिनका थोड़ा सा परिचय कविराज महेन्द्रनाथ शास्त्री लिखित और हिन्दी ज्ञान मन्दिर, बम्बई से गत वर्ष प्रकाशित "आयुर्वेद का संक्षिप्त इतिहास" से मिल जाता है। किन्तु मालूम पड़ता है कि इस ग्रन्थ के लेखक महोदय जैनागम एवं आयुर्वेद सम्बन्धी जैन ग्रन्थ[2] व हिन्दी भाषा के प्राचीन ग्रन्थों से विशेष परिचित नहीं हैं। प्रस्तुत लेख में हाल ही में ज्ञात एक ऐसे ही हिन्दी वैद्यक ग्रन्थ का परिचय दिया जा रहा है।

वैद्यक विद्या स्वार्थ एवं परमार्थ उभय साधिका है—परोपकार के निमित्त व्यवहृत होने से सद्गति एवं अर्थ उपार्जनार्थ व्यवहृत होने से समृद्धि देने वाली है। हिन्दी भाषा में रचित वैद्यक ग्रन्थों का प्रारंभ[3] सत्रहवीं शती में जैन कवि नैनसुख के 'वैद्य महोत्सव' ग्रन्थ से होता है। प्रस्तुत

---

१. हिन्दी भाषा में "करिकल्पलता" (केशवसिंह साल्वकेवार रचित) वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से प्रकाशित है। यहीं से "शालिहोत्र व पशु चिकित्सा" नामक पद्यात्मक ग्रन्थ भी प्रकाशित है।

२. जैनों द्वारा रचित हिन्दी पद्य में वैद्यक ग्रन्थ, हिन्दुस्तानी, वर्ष ११, अंक २

३. डाक्टर रामकुमार वर्मा के इतिहास में रामचन्द्र मिश्र रचित 'रामविनोद' के सं० १५०६ में रचे जाने का उल्लेख है, पर यह ज्ञात है। रचना-संवत् १५०६ आपने किस आधार से लिखा है यह अज्ञात है। मिश्र बन्धु विनोदादि में सं० १६२० बतलाया गया है, पर यह भी गलत है। वास्तव में रामविनोद के रचयिता रामचन्द्र जैन यति थे व रचनाकाल सं० १७२० है। ग्रन्थ लखनऊ से प्रकाशित भी हो चुका है।

ग्रन्थ की रचना सं० १६४९ में हुई थी। यह ग्रन्थ सेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित भी हो चुका है। इसके परचात् रचित २० हिन्दी वैद्यक ग्रन्थों की सूची डाक्टर रामकुमार वर्मा के "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" के पृष्ठ ३४ में पाई जाती है। हिन्दी ग्रन्थों की खोज के प्रकाशित विवरण-ग्रन्थों से इतने ही अन्य ग्रन्थों का पता चल सकता है। हिन्दी विद्यापीठ, उदयपुर से प्रकाशित "राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, द्वितीय भाग" में मैंने राजस्थान के कतिपय ग्रन्थ संग्रहालयों से प्राप्त २१ अज्ञात हिन्दी वैद्यक ग्रन्थों का विवरण दिया है। स्वतंत्र रूप से खोज करने पर संभव है समस्त हिन्दी वैद्यक ग्रन्थों[1] की संख्या सौ से ऊपर पहुँच जाय। प्राचीन पद्यबद्ध हिन्दी वैद्यक ग्रन्थों में वैद्य महोत्तम, रागविनोद, मेघविनोद आदि ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, जो बहुत उपयोगी हैं। अन्यान्य ग्रन्थों में से चुने हुए ग्रन्थ शीघ्र ही प्रकाशित होने आवश्यक हैं।

हिन्दू कवियों की भाँति मुसलमान कवियों ने भी हिन्दी साहित्य की बड़ी सेवा की है व कई सम्राटों, नवाबों व सूबेदारादि ने हिन्दी कवियों को प्रोत्साहन दे कर ग्रन्थ बनवाये व अनेक मुसलमान कवियों ने हिन्दी भाषा में उत्तमोत्तम साहित्य का सृजन किया है। पद्यमय हिन्दी वैद्यक ग्रन्थों के निर्माण में भी मुसलमान कवियों का हाथ रहा है जिनमें से दरबेश हकीम के "आबेहयात" एवं बाल कवि रचित "वैद्यक सटि" ग्रन्थ के विवरण इन पंक्तियों के लेखक द्वारा संपादित हिन्दी ग्रन्थ विवरण, भाग २ में प्रकाशित हो चुके हैं। ये दो ग्रन्थ छोटे ही हैं जब कि प्रस्तुत लेख में वर्णित किया जाने वाला ग्रन्थ बहुत बड़ा है। कवि श्रीपति भट्ट द्वारा सं० १७२० में 'शाहद निदान' के भाषा-रूप 'हिम्मत प्रकाश' ग्रन्थ मुर्तजिया सूबेदार हिम्मत खाँ के आश्रय में बनाया हुआ उपलब्ध हुआ है।

हिन्दी भाषा में सब से अधिक ग्रन्थों का प्रणेता फतेहपुर के दीवान अलफखाँ का पुत्र निजामत खाँ उपनाम बाल कवि था, जिसके ७५ ग्रन्थों का परिचय मैंने राजस्थान भारती, वर्ष १, अंक १ में दिया है। बाल कवि रचित महत्वपूर्ण ऐतिहासिक हिन्दी काव्य 'रसमंजरी'[2] है जिसमें कवि के वंश का विस्तृत इतिवृत्त है। उस वंश में अलफ खाँ की (सं० १६८१ में)

---

१. डाकूपंथी मनीराम संतों ने भी वैद्य पत्रियों की भाँति हजार १००-१५० वर्षों से जनता के उपकार के लिए वैद्यक को अपनाया है व जयपुर के स्वामी लक्ष्मीरामजी आदि कई नामी वैद्य हो गये हैं। आत्माराम नामक डाकूपंथी द्वारा रचित 'आत्म प्रकाश' नामक पद्यमय हिन्दी वैद्यक ग्रन्थ की प्रति भाव हरिदास भण्डार, बाड़ेसरा में मेरे अवलोकन में आयी थी। अन्य संतों के भी रचित अनेक ग्रन्थ मिलने संभव हैं, जिनकी खोज आवश्यक है।

२. देखें हिन्दुस्तानी, वर्ष १५, अंक २ में प्रकाशित लेखक का लेख। प्रस्तुत ग्रन्थ ऐतिहासिक टिप्पणियों के साथ नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित होगा।

मृत्यु हो जाने के बाद का वृत्तांत अनुभूति रूप में जोड़ दिया गया है, जिसमें कवि के ज्येष्ठ भ्राता दौलत खां के उत्तराधिकारी होने, उसकी वीरता व सं० १७१० में स्वर्गवास हो जाने पर सरदार खां के शासक बनने तक का उल्लेख है। इस लेख में इन्हीं दौलत खां द्वारा रचित वैद्यक ग्रन्थ का परिचय दिया जा रहा है। अतः प्रसंगवश दौलत खां का परिचय देना भी आवश्यक होने से 'कायमखानी' में दिये हुए वृत्तांत का सार नीचे दिया जा रहा है:—

"दीवान अलफ खां के वीर हो जाने के बाद उनका पुत्र दौलत खां उत्तराधिकारी हुआ। बादशाह जहांगीर ने उसे मनसब दे कर कांगड़े का गढ़ सुपुर्द किया। वह भी कांगड़े में रह कर पहाड़ी सरदारों की सहायता से शासन करने लगा। जहांगीर की मृत्यु हो जाने पर गढ़वड़ी फैल गई और अराजकता छा गई, किन्तु दीवान दौलत खां अपने स्थान पर अविचल रहा। पहाड़ियों ने मिल कर गढ़ के चारों तरफ घेरा डाल दिया, तब दीवान के दल ने सब पहाड़ियों को मार भगाया और नगरकोट की रक्षा की।

"शाहजहां ने दिल्ली के तख्त पर बैठते ही दौलत खां का मनसब बढ़ा कर सम्मानित किया। दीवान ने १४ वर्ष कांगड़े में रह कर शासन किया, फिर काबुल और पेशावर में जा कर रहा। सीमा के सब शासक दीवान से मिल कर चलते थे। दौलत खां के तीन पुत्र थे—नाहर खां, मीर खां और मुबारक खां।

"दौलत खां का पुत्र नाहर खां बादशाह से मिलने अकबराबाद गया। बादशाह ने प्रसन्नता में उसे मनसब दे कर बड़ा प्यार किया। जब शाही दरबार में गजसिंह के पुत्र राठौड़ अमरसिंह ने सलावत खां को मारा तो बड़ा घमासान मच गया। बादशाह ने हुक्म दिया कि राठौड़ों को मारो, जिससे भविष्य में दरबार में कोई बेवदबी न करे। अमरसिंह के जो छेक आगरे में थे, वे सब-के-सब कट मरे, कोई भी न भागा। रावजी का कुटुम्ब नागौर में था। बहुत से जोधावत पास में थे, अतः उनके पास के कारण नागौर लेने की किसी ने भी स्वीकृति नहीं दी। आखिर वीर नाहरखां ने नागौर के लिए बीड़ा उठाया। बादशाह ने नागौर का पट्टा लिख कर दौलत खां को काबुल से बुलाने के लिए फरमान भेजा और मनसब भी दुगोड़ा कर दिया।

"एक दिन बादशाह ने खां से पूछा—"काबुल से अपने पिता के आने पर नागौर जाओगे या पहले ही जा कर राठौड़ों को निकालोगे?" नाहर खां ने कहा—"आपका फरमान मस्तक पर है। मैं अभी जा कर नागौर दखल करता हूँ।" इस पर बादशाह ने उसे नागौर दे कर बड़ा उमराव बनाया और सिरोपाव दे विदा किया। नाहर खां के पुत्र सरदार खां को बादशाह ने मनसब दे कर अपने पास रखा। नाहर खां ने स्वदेश लौट कर बड़ी भारी सेना के साथ नागौर की ओर प्रयाण किया।

"नाहर खां के नागौर आने पर जोधों ने गढ़ खाली कर दिया। नाहर खां ने उस पर कब्जा कर लिया और अमरसिंह के स्थान पर जयगढ़ में रहने लगा। चार मास सुखपूर्वक बीतने

पर दीवान दौलत खाँ भी काबुल से आ पहुँचा और पिता-पुत्र दोनों आनन्दपूर्वक नागौर में रहने लगे। ७-८ महीने के बाद बादशाह ने फरमान भेजा कि फरमान पाते ही तुम शीघ्रता से पेशावर आओ, शाहजादा वहाँ से बलख लेने के लिए जावेगा, तुम भी उसके साथ जा कर फतह करो। शाही फरमान पाते ही दीवानजी ने प्रयाण किया और नाहर खाँ नागौर में ही रहा। ८ मास नागौर में सुखपूर्वक बीत गये। जब नाहर खाँ ने फौज के बलख जाने की बात सुनी, तो उसने बादशाह के पास लाहौर अर्ज भेजा कि हुक्म हो तो मैं भी हाजिर होऊँ। बादशाह ने उसे बलख भेज दिया। उसने छोटे शाहजादे के साथ बलख फतह कर लिया। दोनों शाहजादों ने दक्षिणी रुस्तम खाँ और दीवान दौलत खाँ को उद्द खोह स्थान में भेज दिया। शाहजादे के पास बलख में नाहर खाँ था। आयु पूर्ण हो जाने से युवावस्था में ही अचानक उसकी मृत्यु हो गई।

"नगर में अब आने पर हाहाकार मच गया। पिता दौलत खाँ को बड़ा दुःख हुआ। बादशाह ने सुन कर बड़ा दुःख प्रकट किया और सरदार खाँ को बुला कर दिलासा दिया। (इस प्रसंग पर कवि जान ने बड़े ही करुण शब्दों में विलाप किया है।)

"बलख से शाही सेना लौट कर काबुल आयी, तो बादशाह ने कंधार विजय करने की आज्ञा दे दी और कुमक भेजी। इधर शाहजहाँ की सेना परस्पर लड़ने लगी। शाही सेना के पैर उखड़ते देखे, तो रुस्तम खाँ दक्षिणी और दीवान दौलत खाँ रण में उतर पड़े और उन्होंने शत्रु सेना को परास्त कर दिया।

"जब शीत काल में बर्फ जमने लगी तो शाही सेना कंधार छोड़ कर काबुल आ गई। जब मौसम ठीक हुआ तो फिर सेना कंधार लेने गई, पर वह हाथ न आने पर उसे काबुल वापिस लौटना पड़ा। तीसरी बार बादशाह ने फिर सेना को भेजा। कंधार में घमासान युद्ध होने लगा। दीवान दौलत खाँ भी चढ़ाई के दौरे करता था। इसी बीच उसे ज्वर हो गया और कुछ दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गई। (मृत्यु वि० सं० १७१० तथा हिजरी सन् १०६३ में हुई।)

"बादशाह ने सरदार खाँ को दिलासा दिया और उसे सिरोपाव दे कर स्वदेश विदा किया। सरदार खाँ अपने वतन लौट कर सुखपूर्वक राज्य करने लगा।"

इन्हीं दीवान दौलत खाँ द्वारा रचित हिन्दी वैद्यक ग्रन्थ का नाम है 'दउलति विनोदसार'। इसकी एक अपूर्ण गुटकाकार प्रति बीकानेर राज्य के अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में विद्यमान है। प्रस्तुत प्रति में अन्य कई वैद्यक ग्रन्थों का भी संग्रह है, केवल बीच के पृ० १६७ से पृ० ३९७ तक में यह ग्रन्थ लिखा हुआ है। अविकल प्रति की अनुपलब्धि के कारण इसमें ग्रन्थ का कितना अंश कम रह गया है व अन्त में ग्रन्थ के रचना काल आदि का उल्लेख था या नहीं, यह कहा नहीं जा सकता। उपलब्ध पत्रों में करीब १५०० पद्य हैं, जिनमें हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत के भी सैकड़ों श्लोक हैं। संभवतः ये किसी अन्य ग्रन्थ से उद्धृत लिये गये होंगे। आश्चर्य नहीं कि ये

ग्रन्थकार के बनाये हुए भी हों, क्योंकि उनमें किसी ग्रन्थ से उद्धृत किये जाने का उल्लेख देखने में नहीं आया।

जैसा कि राजा-महाराजाओं के नाम से रचित बहुत से ग्रन्थों के सम्बन्ध में देखने में आता है, संभव है कि यह ग्रन्थ भी स्वयं दौलत खाँ का रचा न हो कर उसके आश्रित किसी वैद्य विद्या विशारद कवि का रचा हुआ हो। पर प्राप्त अंश में कहीं ऐसा नाम-निर्देश न मिलने से दौलत खाँ द्वारा रचित मान लेना ही ठीक जान पड़ता है। ग्रन्थ का प्रारंभिक अंश व अधिकारों के नामादि नीचे दिये जा रहे हैं, जिससे ग्रन्थ का महत्व भली भाँति विदित हो जायगा:—

दउलति विनोद सार संग्रह

श्रीमंतं सच्चिदानंदं, चिद्रूपं परमेश्वरम् ।
निरंजनं निराकारं, तं किंचित्प्रणमाम्यहम् ॥१॥
दोषकादि सद्वृत्तै, पाठैः पाठानुगे वरे ।
शास्त्रं विरच्यते रुच्यं, ह (दृ?) ष्ट्वा शास्त्राण्यनेकशः॥२॥
"दउलति विनोद सार संग्रह" नाम प्रकृष्ट परमार्थं ।
यत्रा से परोपकृत्यै, सम्मते सुमतं कवीन्द्राणां ॥३॥
श्री मद्दाग्रह मंडला खिल शिरः प्रोद्यत्प्रभा मंडनः ।
श्रीमंतोलिफ खान भूपति वरः नन्या सुरा नन्दरा ॥
तस्य प्रोदय स्यनुम दिवाकरैः भास्वित्प्रभा भास्करैः ।
श्रीमद्दउलति खान नाम वसुधाधीशैः सुधी शाश्रितैः ॥४॥
धनंतरि मुख वैद्य बहु, सिद्ध चिकित्साकार ।
तन सुद्धिइं मुणि योग पथ, लहइं संसारहपार ॥५॥
तावइं चिकिछक योग विद् पछइ चिकित्सा सत्य ।
मुक्ति होइ परभवि निपुण, रहां जाहइ तढ अत्य ॥६॥
धर्म अर्थ अरु काम कउ, साधन एह शरीर ।
जतु विरोपता कारणइ, उद्यम करइ सुधीर ॥७॥
धुरि विदांत विज्ञान तसु, औषध के गुण दोष ।
तास रुद्ध वैद्यक हुयइ, जानु करइ नु अमोस ॥१२॥
देश काल बय धन्हि सम औषध प्रकृति विचार ।
देह सत्व बल व्याधि फुनि, यह औषध गुनकारि ॥१३॥

इति श्री दउलति विनोदसार संग्रहे श्री दउलतिखांन नृपति वर विनिर्मित वैद्यगुणाधिकारः ।

अधिकारों के अंत में:—

ज्ञान परम इह जोगी जानइ, कइ किछु परम वैद्य बलानइं।
पन्थ चितेपि जिहां कछु पाया, भूपति दउलति खान दिखाया ॥१॥

× × ×

जामाता मयुरह सीतलोंह, तिउ पित्तह सेवउ मन अनेहि ।
इउं काल ज्ञान जानहुं सुजान, भाखउ नृप श्री दउलति खान ॥२॥

× × ×

षोडश ज्वर लक्षण सहित, औषध पयाथ बखान।
कहचा बागड देशाधिपति नृप श्री दउलति खान ॥१७॥

इति श्री बागड देशाधिपति श्री अलिफ खान नंदन नृप श्री दउलति खान विरचित श्री दउलति विनोद सार संग्रहे षोडश ज्वराधिकारः ।

प्राप्त ४५ अधिकारों के नाम:—

वैद्यगुणाधिकार, परमज्ञानाधिकार, कालज्ञान, मूत्र परीक्षा, नाड़ी परीक्षा, ज्वर चिकित्सा, अतिसार, संग्रहणी, हर्ष, पुनामोनिक पन, मन्दाग्नि, विसूति, अजीर्ण, कृमिनिदान, पांडु, राजयक्ष्मा, कास, छींक निदान, स्वर भेद, आरोचक, छर्दि, तृष्णा, दाह, उन्माद, वात निदान, आमवात, शूलनिदान, गुल्म, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ, मूत्रघात, अश्मरी प्रमेह भेद, उदरामय प्लीहा, शोथ, अंड वृद्धि, गंडमाल, श्लीपद जलानो, विस्फोट, भगंदर, उपदंश, सूक कष्ट, शीत पित्त, आम्ल पित्त, विसर्पि तथा भावों छूता । (इसके बाद का अंश प्राप्त नहीं है ।)

जैसा कि ऊपर लिखा गया है, प्रस्तुत ग्रन्थ की केवल एक ही अपूर्ण प्रति प्राप्त हुई है। फतेहपुरादि में खोजने पर संभव है इसकी अन्य पूर्ण प्रति भी उपलब्ध हो जाय। आशा है, आयुर्वेद एवं हिन्दी साहित्य के प्रेमी सज्जन अन्वेषण कर इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डालने की कृपा करेंगे।

हिन्दी भाषा व आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का प्रचार दिनों दिन बढ़ रहा है, पर खेद है कि अभी हिन्दी भाषा में इस विषय के ग्रन्थ बहुत ही कम प्रकाशित हुये हैं। यह हिन्दी साहित्य के लिए उचित नहीं है। इन ग्रन्थों की बिक्री भी अच्छी हो सकती है, अतः साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा आदि संस्थाओं व ग्रन्थ प्रकाशकों को वैद्यक सम्बन्धी ग्रन्थों के प्रकाशन की ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिए।

दीवो परतख देवता

अगरचन्द नाहटा

दीवाळी भारत रो एक मोटो सांस्कृतिक त्यूंहार है। जिणी दिन जैन तीर्थंकर भगवान महावीर मोक्ष पधारिया। रात अंधारी हो, जिकै सूं देवां मिल'र रतनां रा दिवलां सूं च्यानणो करियो। जद सूं ही जिण दिन रो नांव दीवाळी पड़्यो। जैन आगम कल्प सूत्र में लिख्यो है, क भगवान महावीर रा मोटा चेला इन्द्रभूति गौतम गोत रा हा। अणरो म्हावीर सूं घणो धरम-सनेह हो; सो भगवान मोक्ष पधारणा री बेळा अण मोह नं छुड़ावण वास्तै अणनं दूजी जगां धरम रो अपदेस देवण नं भेज दीन्या जणा निरवाण-अुछव रै वास्तै देवतावां रो आवणो-जावणो भोत भारी देखियो नं भगवान रं मोक्ष पधारणा री बात-सुणी तो इन्द्रभूति गौतम नं घणो दुख होयो' क सारा लोग तो आपरं अंतकाळ में सागता-पागता कुटम-कबीला नं दूर होवं तो नेड़ा बुलावं पण म. महावीर तो मनं, जिको नेड़ो हो डाण'र दूर भेज दीन्यो, सो आ बात आछी नी होई। फेर विचार करयो यं तो वीतरागी म्हा पुरष हा, म्हारं मोह नं दूर करणं नं ही अो अुपाय करयो दीसै। मनं भी राग-भाव छोड़ देवणो चायं। जिण तरियां विचारतां-विचारतां ही अणनं अुण'ज रात केवल-ग्यान अुपज्यो। जिण वास्तै अो दिन घणो मंगळीक मान्यो जावं। छोटा सूं लगायनं मोटा सारा जीव नं दीवाळी रो दिन घणो हरख-कोड़'र अुछाह रो मानै। घर-घर दीवा जगायनं अंधारी रात नं च्यानणो करियो जावं।

दीवाळी रो नांव जीव घणा दीवां री पांत रो सूचक है। भारत री संस्कृति में दीवो ग्यान रूपी प्रकास रो प्रतीक है। आपणं घर-घर में अग्यान छायोड़ो है, अुणनं दूर भगावण सारू ग्यान रो दिवलो जगावणो घणो जरूरी है। अंधारै नं कुण चावै! चोर नं घघ्घु। बाकी सगळा च्यानणो चावै।

वैदिक प्रार्थना है "तमसो मा ज्योतिर्गमय" अरथात अंधकार सूं निकल'र जोत प्रकास खानी गति होयै। हियै में च्यानणो नी होवण रै कारण जीव आपां दुखी हां। म्हापुरसां रै हियै में च्यानणो होयग्यो, जिण सूं अो अुणरो सारो दुख मिटग्यो! तो आपां भी दीवा जगायनं अंधारो मिटावां अर अग्यान रं अंधारे नं ग्यान रं दिवलै री जोत सूं हटावां। दीवाळी नं घर रो कूड़ो-कचरो मार नाखां नं सफाअी करां, भाय नं जिको औगुणां-दोसां रो कूड़ो-कचरो है, अुणनं फेंक देवां तो आपणं वास्तै सबै ही दीवाळी होय जावै। राजस्थानी जैन कवि धर्मसीजी दीवै नं परतख देवता बतावै:

अलग टळै अंधार सार मारग वळि सूझै।
जीवजन्तु जोवि नं सरव वियहार समूझै॥
मन संका सह मिटै, वळि पुस्तक बांचीजै।
दिन सुप गुरुदेव नं रूप दरसण राचीजै॥
कळि लहहि आम्रि वासी यसह, सुख पावै सह सेवता।
सह लोक मांहि दीसै सही, दीवो परतखि देवता॥

भोज रा बोल : "विद्या"

विद्या मा री दाअी रखाळी करै, बाप री दाअी रखाळी करण में सगयोड़ी रैवै, लुगाअी री दाअी अुदास मन नं राजी करै। सगळी दिसावां में निरमळ सोभा फैलावै अर धन बधावै। कल्पलता री दाअी विद्या मिनख री कांअी-फांअी भलो नी करै! – सगळा मनोरथ पूरा करै।

● सिवसिंघ चोपल

दीपावली सम्बंधी

प्रत्येक समाज में विभिन्न प्रसंगों, घटनाओं व कारणों को लेकर धार्मिक दृष्टि से कई दिन धर्मदिन-त्योहार माने जाते हैं। ये पर्व कई प्रकार के होते हैं और उनके अनुरूप ही विविध प्रकार के उत्सव पर्व अनुष्ठान किये जाते हैं। जैन समाज में लौकिक एवं लोकोत्तर दो प्रकार के पर्व माने गये हैं। सामाजिक दृष्टि से जो पर्व माने जाते हैं वे लौकिक हैं और धार्मिक प्रधान पर्व लोकोत्तर पर्व कहलाते हैं।

जैनागमों से तत्कालीन अनेक प्रकार के उत्सव मनाने की भारतीय प्रथा पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है पर हमारे विद्वानों एवं मुनियों का ध्यान अभीतक उन्हें प्रकाश में लाने की ओर नहीं गया। भारतीय मानव-संस्कृति को समझने के लिये उनका अध्ययन परमआवश्यक है। जैनागमों में लोकोत्तर पर्वों के रूप में तीर्थंकरों के च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवल एवं मोक्ष इन ५ कल्याणकों के दिनों में (तिथियों में) इन्द्रादि देव महोत्सव करते हैं ऐसा उल्लेख पाया जाता है। दीपालिका उन्हीं महान पर्वों में सर्वोत्कृष्ट है। क्योंकि इसकी उत्पत्ति परम तीर्थंकर भगवान के निर्वाण कल्याणक से ही हुई है। प्रसिद्ध जैनागम कल्पसूत्र* में इसका वर्णन इस प्रकार पाया जाता है।

भगवान महावीर ने दीक्षा के पश्चात विभिन्न स्थानों में ४२ चातुर्मास करने के अनंतर ४३ वां चातुर्मास पावा के मध्य में हस्तिपाल राजा की रज्जुगशाला में किया। चातुर्मास रहते हुए वर्षाकाल के चतुर्थ मास सातवें पक्ष अर्थात् कार्तिक वदि १५ के रात्रि को भगवान महावीर मोक्ष पधारे, सिद्ध हुए, बुद्ध हुए। चंद्रमा नामक द्वितीय संवत्सर, प्रीतिवर्द्धन नामक पक्ष, अग्निवेश्य नामक दिन, देवानंदा नामक रात्रि, अर्च्य नामक लव, मान नामक स्तोक, नाग नामक करण, सर्वार्थसिद्ध नामक मुहूर्त, स्वातिनामक नक्षत्र में सर्व सर्व दुःखों का अंत कर के मोक्ष पधारगये।

जिस रात्रि में भगवान महावीर स्वामी का निर्वाण हुआ वह (अभिचारी होते हुए)। बहुत देवी देवता वों के आगमन के कारण प्रकाशमान हुई व कोलाहलपूर्ण हो गई एवं उसी रात्रि को भगवान महावीर के बड़े एवं प्रधान शिष्य इन्द्रभूति गौतम का प्रेम बन्धन नष्ट होकर उन्हें केवलज्ञान प्रकट हुआ।

जिस रात्रि में भगवान का निर्वाण हुआ उसी रात्रि को ९ मल्लकी ९ लच्छवि वंश के काशी कौशल के १८ गण राजाओं ने प्रोषध किया था। उन्होंने भावोद्योत के विच्छेद होने से द्रव्योद्योत करने का विचार किया।

कार्तिक वदी १४, १५ को बेला (दो उपवास) का तप करते हुए ५० हजार साधु साध्वी (भ० महावीर के १४ हजार साधु० ३६ हजार साध्वीयें—कुल ५०हजार) के परिवार सहित स्वर्ग कमल में स्थित गौतम स्वामी का ध्यान करके २४ तीर्थंकरों का इष्ट स्थापन करना और प्रत्येक जिनेश्वर के आगे ५० हजार चावल भेंट करना। कुल चावलों की संख्या १२ लाख हुई। इसके ऊपर अखंड दीपक रख के गौतम स्वामी की आराधना करने से भव्य लोग परम पद अव सुख को प्राप्त होते हैं।

अमावस्या-दिवाली के दिन नंदीश्वर तप स्वीकार करे—उस दिन नंदीश्वर द्वीप की पूजापूर्वक उपवास करना। १७ वर्ष तक (प्रत्येक महिने या वर्ष को) तप करके दीपालिका के दिन उद्यापन करना। नंदीश्वर द्वीप के ५२ जिनालय में या नंदीश्वर के पट्ट पर काच, रत्न के अष्टप्रकारी पूजा करना। ५२ वस्त्र एवं बलि-इला की सामग्री चढ़ाना। इतने ही पकवान सागर गंभीर, भुवली, फल (केले) लाडोर, सुपारी, पान, सेलड़ी, लवंग-खीर के थाल, और दीपक इत्यादि ५२,५२ श्रावकों को देने। दीपोत्सव के दिन अन्य अमावस्या को भी नंदीश्वर तप स्वीकार-ग्रहण किया जा सकता है।

ले०—श्री अगरचन्द जी नाहटा,
सम्पादक-'राजस्थान भारती'

इसरोज द्रव्योद्योत के रूप में ही वर्त्तमान काल में दीपक जलाये जाते हैं। सं० १३८७ के भाद्रपद सुदी १२ को देवगिरि में रचित 'दीपावली कल्प' में जिनप्रभसूरिजी ने लिखा है कि भगवान का निर्वाण अर्द्धरात्रि के समय हुआ था। एवं १८ राजाओं ने प्रोषध पार (पूर्ण) कर भावोद्योत के चले जाने के विरह में द्रव्योद्योत रत्नमय दीपों के द्वारा प्रकाश किया। फलतः क्रम से अग्नि के दीपक जलाये जाने लगे। इसी प्रकार "दीपालिका" प्रसिद्ध हुई 'एवं दिवालिया जाए'। श्रुत सूर्य भगवान के अस्त होने पर श्रावकों ने श्रुत ज्ञान की पूजा की। भगवान महावीर के भ्राता नंदीवर्द्धन की सुदर्शना बहिन ने भाई का शोक निवारण किया (अपने घर बुलाकर भोजन करा के वस्त्र तंबोलादि दिये) तब से 'भाईबीज' नामक पर्व (कार्ती सुदी २ का) प्रसिद्ध हुआ। इसके पश्चात् भी जिनप्रभसूरिजी ने दीपावली पर्व के उपलक्ष में किये जाने वाले क्रियानुष्ठानों का इस प्रकार निर्देश किया है।

श्वेताम्बर जैन साहित्य,

में कई अनावश्यक बातें प्रचलित हो गई हैं जैसे—देव्यादि के अनुकरण में कई मंदिर जोड़ने की प्रथा, तांत्रिक प्रभाव रूप में पद्मावती, क्षेत्र का अवरण एवं पूजा विधान। धार्मिक नियमानुसार तो महावीर भगवान का जप एवं प्रातःकाल में गौतम स्वामी के केवल ज्ञान का जप ही प्रचलित रहा है। अब तो रूढ़ि के अनुसार लक्ष्मीदेवी का पूजन भी किया जाता है। ऐसी अनुचित बातें भी देखी जाती हैं जिनका बन्द होना नितान्त आवश्यक है। एक जूआ खेलना, दूसरा दारू के पटाके आदि छोड़ना, फुलझड़ी जलाना आदि। इनमें बहुत कार्य बड़े बुरे पर्व दूसरा कार्य बच्चे लोग करते हैं। पर ये बहुत अनिष्ट कर हैं।

अब दीपालिका पर्व सम्बन्धी जैन साहित्य का परिचय कराया जाता है—

१. दीपोत्सव कल्प—कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्र सूरि रचित। यह आपके त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र से उद्धृत रूप में पाया जाता है।

२. अपापा बृहत्कल्प (पावापुरी कल्प) अपर नाम दीपमहोत्सव कल्प, इसकी रचना प्राकृत गद्य में श्रीजिनप्रभसूरिजी ने सम्वत् १३८७ के भादों सुदी १२ को देवगिरि में की है। सिंघी ग्रन्थमाला से प्रकाशित 'विविध तीर्थ कल्प' के पृ० ३४ से ४४ में यह कल्प प्रकाशित है। श्री जिनदत्तसूरि ज्ञान भंडार सूरत से 'सिद्धिकल्पदीपालिकाकल्प' के नाम से भी यह कल्प पहले प्रकाशित किया है। जिसके सम्पादकों ने इसीका अनुकरण किया है।

३. दिपालिकाकल्प—तपागच्छीय जिन सुन्दर सूरि ने सम्वत् १४८३ में इसकी रचना की। यह संस्कृत में पद्य-गद्य है। इसकी एक सचित्र प्राचीन प्रति यहां कुं० जोतीचन्दजी खजांची के संग्रह में एवं एक प्रति हमारे संग्रह में भी है। इस पर तेजपाल कृत अवचूरि सं. (१६७१) एवं सुखसागर (सं. १७६३) एवं जिन हर्ष (१७६३) रचित बालावबोध भी उपलब्ध है।

४. दीपालिका व्याख्यान—इसकी रचना संस्कृत गद्य के रूप में खरतरगच्छीय उमेदचन्द्र ने सं० १८३६ में अजीमगंज में की। बेटा से यह व्याख्यान 'द्वादशपर्व व्याख्यान' में प्रकाशित है। इसके तीन हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं।

५. दीपालिका कल्प सार—जिनप्रभ राजेन्द्र सूरि रचित होने का निर्देश जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास में है।

(शेष ११७ पृष्ठ पर देखिये)

* यह सूत्र भद्र बाहु स्वयं रचित माना जाता है अतः वीर० नि० से १७० वर्ष के समय का प्राचीन है।

(59) बाबू छोटे लाल अ० ग्रं० पृ 179-182

दो ऐतिहासिक रचनाएं

N०-159

● सौभाग्यमल जैन

मध्यकालीन जैन विद्वानों का ध्यान ऐतिहासिक रचनाओं के संरक्षण और निर्माण पर बराबर बना रहा है। इसलिये विविध प्रकार की बहुत-सी ऐतिहासिक रचनायें आज भी प्राप्त हैं। पट्टावलियों, आचार्यों के रास, गीत, सीधे संवाद ऐतिहासिक प्रबन्ध व काव्य आदि काफी लिखे गये। इन सभी आधार से तथा प्रशस्तियों आदि से [illegible] के आधार से मध्यकालीन जैन इतिहास बड़े अच्छे रूप में लिखा जा सकता है। पर यह सामग्री बहुत ही बिखरी हुई है। उन सबका संग्रह करना भी बहुत ही कठिन है। गत ३०-४० वर्षों में जैन इतिहास की सामग्री का संग्रह एवं प्रकाशन होता रहा है पर ऐसी रचनाओं की खोज नहीं की गयी इसलिये अभी काम रुक जाता है। दिगम्बर समाज ने कुछ वर्ष पहले तक इस दिशा में काफी काम किया और अब दिगम्बर समाज की ओर से भी अच्छा प्रयत्न हो रहा है। अनेक शास्त्र भण्डारों के सूची पत्र इधर कुछ वर्षों में तैयार हुये हैं और कुछ प्रकाशित भी हो चुके हैं। इससे श्वे०, दिग० और जैनेतर बहुसंख्यक अज्ञात रचनाओं की जानकारी प्रकाश में आई है। यद्यपि यहां से शास्त्र भण्डार अभी तक अज्ञात अवस्था में पड़े हैं। अब तो इन सबकी सूचियां न बन जाय तब तक जैन साहित्य का महत्वपूर्ण अंश प्रकाश में नहीं आ सकता।

वैसे तो सामान्यतया दि० शास्त्र भण्डारों में दिगम्बर ग्रन्थ ही अधिक मिलते हैं इसी प्रकार श्वे० भण्डारों में श्वेताम्बरों के। फिर भी कुछ अन्य व महत्वपूर्ण प्रतियां श्वेताम्बरों की दिगम्बर भण्डारों में मिल जाती हैं और दिगम्बरों की श्वे० भण्डारों में। इनमें से कई रचनायें तो ऐसी भी होती हैं जो सर्वथा अज्ञात होने के साथ-साथ विशेष महत्व की हैं। कुछ रचनाओं की तो केवल एक-एक प्रति बच पाई है। ऐसी ही दो श्वे० ऐतिहासिक रचनायें जयपुर के दि० शास्त्र भण्डार में प्राप्त एक गुटके में लिखी हैं। इन रचनाओं का ऐतिहासिक सारांश पाठकों के समक्ष प्रकाशित किया जा रहा है। ये दोनों रचनायें श्वे० पूज्यजी लोंकागच्छ के आचार्यों संबंधी हैं और इनकी कोई दूसरी प्रति श्वेताम्बर भण्डार में अभी तक नहीं मिली है। इन दो आचार्यों के नाम क्रमशः 'चिन्तामणी' और 'जेमकरण' हैं। जेमकरण, चिन्तामणी के शिष्य और पट्टधर थे। दोनों का ही जन्म राजस्थान के आऊवा शहर में हुआ था। आचार्य 'चिन्तामणी' संबंधी रचना का नाम श्री पूज्य श्री चिन्तामणी जी जन्मोत्पत्ति स्वाध्याय रचना के अन्त में लिखा हुआ है। इसमें उनके जन्म से लेकर स्वर्गवास तक का वृत्तान्त पाया जाता है। दूसरी रचना का नाम "गणनायक श्री जेमकरण जी जन्मोत्पत्ति संवारा विधि" अन्त में लिखा गया है। इसमें जेमकरण के जन्म से स्वर्गवास तक का वृत्तान्त है। दोनों रचनाओं* का ऐतिहासिक सारांश नीचे दिया जा रहा है।

(१) आऊवा शहर में श्रावक भीमसाह के पुत्र भीमराजसाह की पत्नी चतुरंग दे की कुक्षी में चिन्तामणि कुमार अवतरित हुए। संवत् १६८४ मिती पौष सुदी ७ गुरुवार को जन्म लेकर क्रमशः युवावस्था को प्राप्त हुए। श्री यशुराजजी की वाणी सुनकर वैराग्यवासित हो माता-पिता से दीक्षा लेने की अनुमति मांगी। चरित्र की दुर्द्धर्षता बताने पर

* दोनों रचनाओं की प्रतिलिपि महोपाध्याय श्री विनयसागरजी ने श्री जैन साहित्य शोध संस्थान से प्राप्त कर दी है इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

श्री कुमार का प्रथम वैराग्य देख माता-पिता ने आदेश दिया और युवराज (चिन्तामणि) का दीक्षा महोत्सव प्रारम्भ किया। पत्रिका भेजी मिली। श्री धनराज जी साधु परिवार सहित पधारे। संवत् १७०४ मिती ज्येष्ठ वदि ५ गुरुवार को श्री चिन्तामणिजी ने गुरु श्री धनराज जी के पास संयम मार्ग स्वीकार किया।

इनका प्रथम चातुर्मास जयनगरा, दूसरा बगड़ी, ३ सीधा रसलाम, पांचवां नूरत, सातवां खटूआ कुचेरा, सातवां पुष्करणी, आठवां सांभर, नवां बिम्बपुर, दसवां मारूआ सूरत, बारहवां सुथड़ी (सोजत), तेरहवां रूपीनगर चौदहवां दूंगी, पन्द्रहवां दिल्ली सोलहवां अमेरपुर (आगरा) सत्रहवां हरसौर में हुआ। ये सब चौमासे गुरु श्री के साथ ही हुए। श्रीधनराजजी साधीजी द्वारा धर्म की महिमा बढ़ाते हुए मारवाड़ आये। आटवा पधारने पर संघ ने धूमा स्थापन किया। राव महेशदास ने वहीं पर (चिन्तामणिजी) की पट्टशय स्थापित करने की प्रार्थना की। उत्सव प्रारम्भ हुआ। राव महेशदास के [illegible] ने पद महोत्सव किया। स्वधर्मी वात्सल्य हुए, गंभीर कमलचन्द रावजी की अर्ज श्री और चिन्तामणि जी की योग्यता जान कर श्री धनराजजी ने संवत् १७२१ ज्येष्ठ वदि ५ को उन्हें स्वयं पट्ट पर स्थापित कर गच्छ भार संभलाया।

इसके बाद मुनिमण्डल सहित विचरते हुए जोधपुर आये। अठावनवां चौमासा करके उन्सठवां लूणसर, साठवां जालोर, इकसठवां पाली, बाईसवां बनड़ी चातुर्मास हुआ। संवत् १७२२ (१६) में रेवा नगर पधारे। वहां आषाढ़ सुदि ११ के दिन गुरु श्री का निर्वाण हुआ। श्री चिन्तामणिजी ने चौसठवां चातुर्मास नाडोल, पैंसठवां किशनगढ़, छयासठवां नोहलाई, सत्तावनवां रतनपुरी, अठावनवां अहमदपुर, उनसठवां मलकापुर, चातुर्मास किया। अमरराज व दीपराज ने खूब सेवा की। सत्तरवां चातुर्मास [illegible] भालापुर, साथ पीपाड़ बत्तीसवां, श्री चातुर्मास तेईसवां-चौबीसवां उदयपुर में, पैंतीसवां रतनावती में किया। छत्तीसवां उज्जैन, सैंतीसवां दिल्ली, अड़तीसवां नौरंगपुर, उनचालीसवां बेरीगढ़, चालीसवां अलवर, इकचालीसवां सिलोणे बेयालीसवां परबतसर, तेंयालीसवां सोजत चातुर्मास हुआ। संवत् १७४६ का चातुर्मास सोजत करके फिर परबतसर आये। दीपचन्द ने गुरु श्री से श्री सेमकरणजी को गच्छभार सौंपने की प्रार्थना की। [illegible] और श्रीसंघ एकत्र हुआ। रूपनगर और कुशलगढ़ के संघ ने बहुत-सा अर्थ खर्च किया। दीपचन्द ने तथा सेमसिंह ने स्वधर्मी वात्सल्य-[illegible] किये। रूपनगर व परबतसर के संघ ने मुनियों के संघाड़े में पहिरावणी की। इस प्रकार बड़ी महिमा हुई और गच्छनायकों की जोड़ी सूर्य-चन्द्र जैसी सुशोभित लगने लगी। संवत् १७४७ का ४८ वां चातुर्मास किशनगढ़ हुआ। फिर रूपनगर, अहिपुर, धींधड़ा, दिल्ली, कुरुक्षेत्रपुरी में तीन अम्बालावाद में दो चातुर्मास करके ५४ वां दिल्ली में किया, ५५ वां बनड़ी करके किशनगढ़ पधारे। संघ ने बड़े समारोह पूर्वक स्थापन किया और विनती करके गच्छराज को वहीं रखा। पांच चातुर्मास किये पांचवें चौमासे में पट्टधर को अपने पास रखा। फिर साठवां चातुर्मास मुकुन्दगढ़ किया, श्रावकों ने बड़ी सेवा की। संवत् १७६६ मिती फागुन वदि २ शनिवार के दिन श्री चिन्तामणि ने संथारा किया। चौरासी लक्ष जीवायोनि से आलोचनापूर्वक सात प्रहर का अनशन पूर्ण कर तृतीया के दिन रविवार को गुरुश्री निर्वाण प्राप्त हुए। संघ ने नवखण्डी मंडी को पंचरंगी ध्वजाओं से सुसज्जित कर वाजित्र आदि के साथ बड़े उल्लास से गुरु की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न की। श्री चिन्तामणिजी अपने नामके अनुरूप संघ की कामनाएं पूर्ण करें।

संवत् १७६६ कार्तिक वदि १३ शशिमंगलवार के दिन श्री चिन्तामणिजी के पट्टधर श्री सेमकरणजी

के प्रसाद से सिद्ध [illegible] के [illegible] श्री पूज्य श्री चिन्तामणिजी जन्मोत्सव [illegible] की। जो नर नारी स्थिर चित्त से स्तुति करेंगे, सुनेंगे वे जीवों को प्राप्त करेंगे।

आचार्य चिन्तामणि के गुरु का नाम धनराज था। चिन्तामणि जन्मोत्सव स्वाध्याय में दिया है। पर इनसे पहले की परम्परा गुजराती तपागच्छ की पट्टावली में ज्ञात होती है। जिनका सारांश जैन गुर्जर कविओ भाग ३ के परिशिष्ट पृ० ८ में प्रकाशित हुआ है। उसके अनुसार सोमसुन्दर के मत में सर्वप्रथम [illegible] भाणजी दीक्षित हुए। पश्चात् [illegible] मोदाजी, [illegible] जी, [illegible] जी, [illegible] जी, [illegible] जी, [illegible] धनराज, [illegible] धनसिंह, [illegible] धनराज जी, [illegible] जी, और [illegible] जी क्रमशः सुधर्मा सोमसुन्दर के आचार्य हुये। [illegible] के शिष्य [illegible] जी हुए। उनकी [illegible] में [illegible] १७ वर्ष के बाद संवत् १७१३ में [illegible] ने पुनः गच्छ की एकता का प्रयत्न किया। पर इनकी शिष्य संतति तो अलग चलती ही रही। धनराज के बाद 'चिन्तामणि' गच्छ नायक बने। और उनके पट्ट पर [illegible]। जिनका विवरण [illegible] जन्मोत्सव [illegible] नामक दूसरी रचना से प्राप्त है जिसका ऐतिहासिक सारांश नीचे दिया जा रहा है—

(२) आड़वा शहर में संघ [illegible] सोमसाह निवास करते थे। उनके पुत्र रामसाह की स्त्री का नाम राणा देवी था। [illegible], पुत्रवती और शीलवती थी। संवत् १७०६ जिसी माघ सुदि १२ के दिन शुभ वेला लग्न में शुभ स्वप्न सूचित बालक का जन्म हुआ। जिसका नाम श्री [illegible] रखा गया। क्रमशः वृद्धि पाता हुआ कुमार, तरुण अवस्था को प्राप्त हुआ। एक बार आड़वा नगर में गुरुवर्य चिन्तामणि जी पधारे। जिनके उपदेश से वैराग्यवासित हो कुमार ने माता-पिता से दीक्षा लेने की अनुमति मांगी। फिर [illegible] के साथ संवत् १७२५ माघ सुदि १३ बृहस्पतिवार के दिन गुरु श्री से संयम ग्रहण किया। तदनन्तर संवत् १७२६ का प्रथम चातुर्मास श्रीपूज्य जी के साथ रेवानगर में हुआ। दूसरा चौमासा सादड़ी, तीसरा गिरोयारी, चौथा नोहलाई, पांचवा रतनपुरी, छट्ठा महानपुर, सातवां मलकापुर, आठवां घृतभाजनपुर, नवां तात, दसवां पीपाड़ में हुआ। फिर उज्जैन में दो चातुर्मास हुए। अर्थात् व दोदराज ने बड़ी सेवा की। तेरहवां चातुर्मास बड़ोदा, चौदहवां उज्जैन, पन्द्रहवां दिल्ली, सोलहवां नौरंगपुर, सत्रहवां जेरी नगर, अठारहवां रूप नगर व उन्नीसवां चातुर्मास सिलाणे हुआ। बीसवां चातुर्मास पश्चात्, इक्कीसवां सोजितपुर किया। समस्त श्रावकों ने सेवा कर अपने मनोरथ पूर्ण किये।

सोमन [illegible] गुरु श्री चिन्तामणि गच्छपति के साथ उग्र विहार करते हुए परबतसर आए। [illegible] ने [illegible] गच्छाधिपति से प्रार्थना की कि खेमकरण जी का पदोत्सव परबतसर में ही होना चाहिये। फिर स्वीकृति मिलने पर बड़े समारोहपूर्वक पदोत्सव की तैयारियां होने लगीं। हरनगर व कृष्णगढ़ का संघ एकत्र हुआ। जीमनवार हुए, बहुत-सा अर्थ व्यय किया। कृष्णगढ़ के लुगावत गोत्रीय जसवंत श्रावक व रूपनगर-परबतसर के कोटेचा जिनदास के वंशजों में प्रधान दीपचंद थे। बहुत से उत्सव किये। जिनदास के सभी परिवार वालों ने अर्थ व्यय किया। मुनियों को पहिरावणी दी। कुंकुम के स्वस्तिक व मोतियों से चौक पूरे गए। नाना प्रकार की वाजित्र ध्वनि के बीच संवत् १७४२ माघ सुदि १३ के दिन श्री पूज्य चिन्तामणि जी ने श्री खेमकरण जी को आचार्य पद प्रदान किया।

श्री खेमकरण जी का २२ वां चातुर्मास कृष्णगढ़, तेईसवां सिलाणे, फिर दिल्ली, फूलेचपुरी में तीन चौमासे करके मुकुन्दगढ़, आऊवा पधारे। श्रावक लोगों ने नाना प्रकार से सेवा की। फिर रत्नपुरी [illegible] पधारे, [illegible] ने

खूब भक्ति की। इतनेमें चौमासा परचकर फिर सोनत, केसवगढ़ व पुनः सोजत चौमासा किया। फिर बरसोड़े, लांबोया चौमासा करके संवत् १७६३ में कृष्णगढ़ चातुर्मास किया। मिती कार्तिक वदि ३ के दिन सूज्य श्री चिन्तामणि जी का स्वर्गवास हुआ।

संवत् १७६४ का चातुर्मास रेवाड़ीमें करके दिल्ली पधारे। श्रावक संघ प्रसन्न हर्षित हुआ। उन दिनों बादशाह का प्रतापी राज था। राज दरबार में श्रावक संघ का बड़ा मान सन्मान था। जयवाल वंशज पुण्यात्मा श्रावक दीवान पद पर सुशोभित थे। गुरुश्री समारोह-पूर्वक स्वागत-सामैला साहमा प्रभावनादि खूब सत्कार हुए। पर्युषण पर्वाराधना, साहमा, संघसमेत पारणादि से महिमा बढ़ी। संवत् १७६५ का चातुर्मास अलवर में पूर्ण कर फाल्गुन सुक बहीं विराजे। अन्त में अपना आयु शेष ज्ञात कर अन्तिम देशना देकर चौविहार संथारा ग्रहण कर लिया। पाप आलोचना कर चौरासी लक्ष जीवा योनि से क्षमतखामणापूर्वक पाप पहीं का संथारा पूर्ण कर फाल्गुन वदि ८ शनिवार के दिन पूज्य गुरु श्री खेमकरण जी स्वर्गवासी हुए। इस अनशन के अवसर पर दिल्ली के श्रावकों ने नाना उत्सव व ८४ गच्छ के साधुओं को प्रतिलाभ दिया। गुरु श्री की स्तवना सुप्रभ सा पट्टधर धर्मसिंह सूरि ने संवत् १७६६ श्रावण शुक्ला ७ सोमवार के दिन वयणीयें ग्राम चौमासा करके की। सदा इसे सुनने गुनने वाले संघ का जयजयकार हो।

उपरोक्त रचना (सारांश) से स्पष्ट है कि खेमकरण के बाद धर्मसिंह पट्टधर हुए। ये प्रच्छे विद्वान थे। इनके रचित अन्तानवे स्तोत्र के चतुर्थ पाद पूर्ति रूप चिन्तामणि अन्तानवे स्तोत्र टीका सहित प्राप्त है। श्री आगमोदय समिति द्वारा यह स्तोत्र, स्तोत्र टीका, और गुजराती अनुवाद काव्य-संग्रह द्वितीय भाग में ३८ वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका है। स्तोत्र टीका में भी धर्मसिंह ने अपने गुरु खेमकरण सम्बन्धी निम्नोक्त उल्लेख किया है—"गुरु खेमकर्ण पादप्रसादमुदितः स्वयं शिक्षाविस्तरात् स्वहस्तदीक्षाप्रदानात् स्वपदस्थापितत्वात्गुरुः—महान् गुरुर्मदीय धर्मोपदेष्टा श्री पूज्यः खेमकर्णाभिधेयः तेषां (तस्य) पाद प्रसादेन-चरणप्रभावेण मुदितो हर्षितः गुरु खेमकर्ण पाद प्रसाद मुदितः, श्रीमद्गुरुपादानुग्रहप्रवृद्धहर्ष इत्यर्थः। अत्र खेमकर्ण शब्दस्य श्रवण नक्षत्रस्य च चतुर्थपादे जन्मत्वान्मूर्धन्य षकारादिक उचित एवेति निर्णीय लिखितोऽस्ति। अथवा ग्रामनाम्नोः संस्काराभावान्नाम विचारः।" खेमकरण के शासनकाल में वर्द्धमान के शिष्य ऋषि दीप ने युगप्रधानगुरुस्तवनकी चौपाई की रचना संवत् १७४७ की विजयादशमी को की। दीप कवि की अन्य दो रचनायें धर्मसिंह के धर्मशासन में रची गई हैं। एक पंचमी चौपाई दूसरी सुदर्शन सेठ कवित्त। ये रचनायें बहुत ही सुन्दर हैं। शील रक्षा भाग २ में कई वर्ष पूर्व प्रकाशित भी हो चुकी हैं। इन दोनों की हस्तलिखित प्रतियां हमारे संग्रह में हैं।

जिस गुटके में चिन्तामणि और खेमकरण संबंधी ऐतिहासिक रचनायें मिली हैं वह जयपुर के टोडियों के मन्दिर के शास्त्र भण्डार में गुटका नं० ६७ के रूप में है। इस गुटके में चिन्तामणि भास, धर्मसिंह गीत तथा चिन्तामणिरचित शीतल स्तवन (सं १७१६) आदि रचनायें भी हैं।

धर्मसिंह गीत के अनुसार उनके पिता का नाम नंगाभम और माता का नाम राजुल दे था। धर्मसिंह के बाद पट्टधर कौन बने और इनकी परम्परा कब तक चलती रही, अन्वेषणीय है।

(166) श्रमण 11-12 / 1960 9-7-8-9

दिल में दिवड़ो थाय

N - 160

दीपक जलते हैं और बुझ जाते हैं। प्रकाश स्थायी नहीं रहता। क्यों? श्री अगरचन्दजी नाहटा ने इसी प्रश्न का समाधान पेश किया है।

दिवाली आती है। हर्ष और उल्लास प्रकट होता है। दीपक जलते हैं और बुझ जाते हैं। इसके साथ ही हमारा उत्साह भी कहीं चला जाता है और हम दिवाली को भूला देते हैं। इस तरह न मालूम इस छोटे से जीवन में कितनी दिवालियाँ आईं और चली गईं। सोचें। आखिर उनसे लाभ क्या हुआ? हमारा अज्ञान-अंधकार आज भी बना हुआ है। हृदय में ज्योति प्रकट नहीं हुई। दुनियाँ को देखने और जानने का प्रयत्न किया, पर अपनी आत्मा को नहीं। इसलिए प्रकाश स्थाई नहीं हो पाया। ज्ञान निर्मल, सम्यक् और केवल नहीं हो पाया। अब हमें 'बीति ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेय' इस प्रशस्त वाक्य को हृदयंगम करके अन्तरात्मा को आलोकित करना है, दिल में विवेक का दिया जलाना है।

मैं कौन हूँ? चैतन्य एवं ज्ञान स्वरूप आत्मा। और दृश्यमान पदार्थ हैं—पौद्गलिक, जड़, विनाशी। मैं अजर अमर अविनाशी हूँ। मुझे अपने स्वरूप को पहचान कर जो मेरे नहीं हैं, उन समस्त पदार्थों से ममत्वभाव हटाना है। पौद्गलिक विषय-वासनाओं में सुख-प्राप्ति की आशा लगी हुई है, उसे दूर करना है। अपने स्वरूप में ही स्थिर होना है। स्व-पर विवेक या भेद-विज्ञान ही आत्मोन्नति का प्रथम सोपान है। हमें ज्ञाता, द्रष्टा मात्र रहना है, कर्ता और भोक्ता नहीं बनना है। इस प्रकार कर्मों का संग निवारण कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होना है।

श्रमण 11-12

भगवान महावीर ने कार्तिक कृष्णा अमावस्या की रात्रि में सिद्ध, बुद्ध और मुक्त स्वरूप को पाया। उनके लिए तो यह दिन अत्यन्त मंगल और कल्याण रूप बन गया। इसी तरह उनके प्रधान शिष्य गणधर गौतम को भगवान महावीर से प्रशस्त राग होने के कारण केवल्य ज्ञान प्राप्त नहीं हो रहा था, वह बाधक राग-भाव महावीर के निर्वाण-प्रसंग से दूर हुआ और तत्काल गौतम स्वामी को भी कैवल्य-ज्ञान प्राप्त हो गया। अतः उनके पूर्व जैनसंघ के लिए इस आध्यात्मिक पर्व का बड़ा महत्व है। इस अवसर पर हमें अपने अन्तर को टटोलना है। राग-भाव को हटाकर वीतराग बनना है। यह बनें कैसे? इस विषय में श्री सहजानन्द कृत कुछ भावपूर्ण पद्य उपयोगी हैं—

दिलमां दिवड़ो थायं, स्व-पर समझाय।
मिथ्यात्व ने टाळी, हूं उजवुं पर्व दीवाळी॥
अस्तित्व गुण हूं आत्म प्रभु, शुद्ध स्व-पर प्रकाशक अन्य विभु।
मन वच काया थी भिन्न, कर्म तन टाळी। हूं उजवुं पर्व दीवाळी॥
नित्यत्व गुणे हूं अविनाशी, निर्मल चिन्मय निज गुण राशी।
अकृत्रिम सहज स्वरूपी, अखण्ड त्रिकाळी। हूं उजवुं पर्व दीवाळी॥
हूं शुद्ध बुद्ध सुखधाम महा, हूं स्वयं ज्योति परिमुक्त अहा।
'सहजानंद' कर्ता भोक्ता स्वरूप सँभाळी॥ हूं उजवुं पर्व दीवाळी।

जैन बन्धुओं से—

धरम पंथ साधे बिना नर तिरियंच समान!

श्री समीर मुनि 'सुधाकर' ने ११९ गांवों में घूम-घूम कर ५९० घर वाले लोगों को मद्य-मांस का त्याग करवाया है। अभी भी इस प्रकार मद्य-मांस त्याग का अभियान चल रहा है। हमें इस अभियान में आप के क्रियात्मक सहयोग की जरूरत है। आशा है तन-मन-धन से तथा-संभव सहायता देकर आप जैन धर्म की अपूर्व सेवा का लाभ लेंगे।

—मंत्री, श्री जैनधर्म प्रचारक संघ, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान)

दुःखों का बाप—ममत्व

—श्री अगरचन्द नाहटा

विश्व में जितने भी प्राणी हैं, सभी सुख की आकांक्षा रखते हैं और उसकी प्राप्ति के लिये निरन्तर प्रयत्नशील हैं। पर हमारी प्रयत्न करने पर भी ये सदा दुःख की ही विषम ज्वाला से संतप्त नजर आते हैं, उनकी अशांति घटने के बजाये बढ़ती जा रही है, इसका कारण क्या है? यही आश्चर्य एवं अन्वेषण का विषय है। गंभीर विचार करने पर सहसा दो प्रश्न हमारे सामने आते हैं, प्रथम क्या सुख कोई वास्तविक सत्य न होकर कल्पनामात्र है? या सुख के वास्तविक स्वरूप एवं मार्ग से हम सर्वथा अपरिचित हैं सुख की जो कल्पना हमने कर रखी है, वह भ्रान्तिमूलक है? अन्यथा ऐसा अन्य कारण और हो ही क्या सकता है कि जिसके फलस्वरूप अपनी बुद्धि एवं शक्ति के अनुसार पूर्ण प्रयत्न करते रहने पर भी हमें इच्छित फल-सुख प्राप्त नहीं होता।

प्रथम प्रश्न पर जरा और गम्भीरता से विचार करने पर पता चलता है कि वह प्रश्न समीचीन नहीं है। क्योंकि हमारे पूर्ववर्ती ऋषि मुनियों ने उस आनन्द का अनुभव किया है, एवं अब भी कई आत्मायें ऐसी नजर आती हैं कि उनके दर्शन, वचन श्रवण एवं सत्संग से परम शान्ति का अनुभव होता है, अतएव यही विश्वास होता है कि सुख एक वास्तविक सत्य है। हां हमारी मान्यता एवं मार्ग में भ्रान्ति हो सकती है। जिस प्रकार तेली का बैल आंखों पर पट्टी बंधी रहने के कारण घानी के चारों ओर घूमता हुआ जब थक जाता है तो मन ही मन सोचता है कि मैंने बहुत चक्कर लगाये, पर आंख खुलने पर उसी घानी को पास पाकर उसकी भ्रान्ति भूल नजर आती है। वही दशा हमारी है।

हमारी सुख की कल्पना भ्रान्तिमूलक है, इसका विश्वास हमें दो समस्याओं पर विचार करने से स्वतः हो जाता है, क्योंकि हमारी कल्पना में संग्रह एवं भोग ही सुख के साधन हैं, तब निरन्तर आत्म चिंतन करने वाले योगीजन कहते हैं कि सुख भोग में नहीं त्याग में है। इससे सुख के सम्बन्ध में एक नई दिशा मिलती है तथा एक प्राणी जिसे सुख का साधन मानता है, वही अन्य प्राणी के लिये दुःखप्रद सिद्ध होता है। केवल यही नहीं, भिन्न-भिन्न प्राणियों की बात को छोड़ भी दें तो भी एक ही व्यक्ति को अपने जीवन में ऐसे अनेकों अनुभव मिलते हैं कि एक ही बात एक बार उसे आनन्दप्रद होती है, वही अन्य समय में उसे दुःखदायक हो जाती है। यथा—एक खाद्य वस्तु नीरोग स्वस्थ अवस्था में रुचिकर होती है वही रोगी अवस्था में अप्रिय हो जाती है। पुत्र प्राप्ति सुख का साधन है, पर जब कोई पुत्र अविनीत हो गया हो या केवल पुत्र ही पुत्र उत्पन्न हो और द्रव्याभाव हो, तो कब पर कष्ट उठता है, अब पुत्र उत्पन्न न हो तो अच्छा, या कन्या हो जाने से ठीक है। इसी प्रकार के अनेक प्रसंग हैं। इससे एक सिद्धांत पाया जाता है कि सुख दुःख वस्तु के संयोग वियोग में नहीं, पर व्यक्ति के विचारों पर निर्भर है।

यही बात एक अन्य उदाहरण द्वारा विशेष स्पष्ट हो जाती है। वह यह है—थोड़े समय पूर्व

को बदला लेना, आँख खोलकर बंद कर राष्ट्रीय कार्यकर्ता जेल जाते हैं, तो उनका मान बहुत अधिक बढ़ जाता है, उनके गलत गुणों की माला पहनाई जाती है। जो जेल जाते हैं वे भी वास्तव में भला नहीं मानते। जो वस्तु अत्यन्त दुःखप्रद थी उसे वे सुखकर भी स्वीकार नहीं मानते। कोई उन कष्टों को बड़े आनन्द के साथ भोगते हैं, वास्तव गुणों को वे दुःख मानते हैं।"

अब हमें देखना यह है कि सुख किसे कहते हैं? एवं दुःख का मूल कारण क्या है? महापुरुषों ने सुख का अभाव सुख माना है। अतएव हमें केवल सुख के कारण को जानकर उसका अभाव कर देना आवश्यक है। अनुभव एवं आगम ग्रन्थ बतलाते हैं कि दुःख ममत्व भाव के कारण होता है। जहाँ ममत्व भाव नहीं है, वहाँ दुःख की अनुभूति नहीं होती। उदाहरणार्थ—विश्व में प्रति समय अनंत प्राणी उत्पन्न होते हैं, व मरते हैं, पर हाँ उनसे कोई हमें विषाद नहीं होता और जब हमारे या हमारे कुटुम्ब में कोई बालक जन्म लेता है, तो हमारे हृदय में हर्ष होता है और जब कोई आत्मीय मरता है, तो शोक होता है। इसका कारण अति स्पष्ट है कि जिसके प्रति हमने ममत्व किया, कि वह मेरा है, उसके संयोग वियोग से सुख दुःख के भाव उत्पन्न होते हैं, जहाँ हमारी ममत्व बुद्धि नहीं है, उनके संयोग वियोग में हमारी चित्त वृत्ति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। हम अपने सामने किसी दूसरे व्यक्ति की एक वस्तु को नष्ट होते या करते हुए देखते हैं पर विचार करते हैं कि अपने को इससे क्या? और यही वस्तु जब हमारी होती है तो उसको नष्ट नहीं होने देते। यदि कोई करे तो उसके प्रति द्वेष उत्पन्न हो जाता है। इन सब बातों से यह सहज जाना जाता है कि दुःख ममत्व भाव में है। अतएव ममत्व भाव को छोड़ कर समत्व धारण करना चाहिए।

ममत्व बुद्धि वस्तु के सत्य स्वरूप के विचार से नष्ट होती है। जिस वस्तु के प्रति हमारा मोह हो, उसके सम्बन्ध एवं परिणाम पर विचार करो है, तो उस पर से ममत्व हटने लगता है। जैसे मिठाई सुस्वादु खाद्य पदार्थ को खाने के बाद उसकी क्या गति होती है? विष्ठा, जिसे देखने को भी जी नहीं चाहता, दुर्गन्ध से भी मचलने लगता है। उस वस्तु की इस गति पर विचार करें तो उस पर से रुचि हटने लगेगी। शरीर को हम अपना करके मानते हैं। इसके कारण उसके लिए अनेक पाप कर्म करते हैं, उसकी रक्षा एवं सुन्दरता वृद्धि के लिए अपने बहुमूल्य जीवन का काफी समय लगा देते हैं, पर जब हम उसकी अन्तिम अवस्था भस्मीभूत राख, जलावस्था या कृमि अवस्था पर विचार करते हैं तो उस पर जो ममत्व है, वह शिथिल होता चला जायगा। इसी प्रकार कुटुम्ब परिवार के प्रति जो स्वार्थमय सम्बन्ध है, उसके परिणाम पर विचार करें कि हम उनके लिए कहाँ तक दौड़ धूप मचा रहे हैं, अन्याय से धनोपार्जन करते हैं, पर अब उनकी स्वार्थपूर्ति में कमी हुई कि वे ही शत्रु सदृश हो जाते हैं। मरने पर कोई साथ नहीं जा सकता, सब धन माल जिसके लिए मनुष्य लाखों अन्याय मनुष्य करता है, वह सब यहीं पड़ा रहेगा, उसका हिस्सा खाने न जायगा। आत्मा अकेला आया एवं अकेला जायगा। अपने कर्मों का भोग उसे स्वयं भोगना पड़ता है। कुटुम्ब या शोक का कोई बटवारा नहीं कर सकता। इन सब परिणामों पर विचार करने से वैराग्य का उद्भव होता है और ममत्व घटता चला जाता है।

वास्तव में आनन्द आत्म ममता में है। हरिण जिस प्रकार अपनी नाभि में कस्तूरी होने पर भी उसकी सुगन्ध से मुग्ध होकर चारों ओर दौड़ता फिरता है, पर उस गन्ध का कारण उसकी नाभिस्थित कस्तूरी ही है, इसे नहीं जानता, उसी प्रकार मनुष्य वास्तविक सुख एवं उसके मार्ग को भूल कर आनन्द के लिए प्रति समय इधर-उधर दौड़-धूप कर रहा है। पर जब भूल भ्रान्ति के कारण अज्ञान एवं दुःख के कारण ममत्व को छोड़ देंगे, तो ही हमें परमानन्द की प्राप्ति होगी।

दान धर्म की उत्पत्ति व उसके प्रकार

विवेक एवम् सावधानी की आवश्यकता

श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर।

धर्म दुर्गति में पड़ते हुए जीवों को बचाता है तथा अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति करवाता है। धर्म के अनेक प्रकार हैं और उसकी भिन्न-भिन्न व्याख्याएं भी अलग-अलग विचारकों ने की है। जैनधर्म में वस्तु के स्वभाव को धर्म कहा है। जिस वस्तु का जो स्वभाव है वह उसका धर्म है। जैसे अग्नि में उष्ण ताप दाहकता है तो यही उसका धर्म है। इस तरह जीव या आत्मा का धर्म है। ज्ञान दर्शन चारित्र में रमणता। अपने स्वभाव में रहना ही आत्म धर्म है। जितने जितने अंश में आत्मा अपने स्वभाव को छोड़कर पर भाव विभावों में रमण करता है उतने अंशों में कर्मों का संचय होकर आत्मगुणों का घात होता है अर्थात् उन पर कर्मों का आवरण आकर उनका प्रभाव दब सा जाता है। इस लिए उसे अधर्म कहा गया है। हिंसा और अहिंसा की वास्तविक व्याख्या भी यही है। दूसरे के हिंसा करने से पहिले अपनी आत्मा दुर्भाव ग्रस्त होती है, मन में राग-द्वेष परिणाम उत्पन्न होते हैं वही वास्तव में हिंसा है। दूसरे जीवों की हिंसा का प्रसंग आवे या न भी आये पर अपनी हिंसा [illegible] अपने बुरे परिणामों से होती [illegible] पर [illegible]

महत्व इसलिए ज्यादा है कि वह हमें परिग्रह के ममत्व से दूर करता है। परिग्रह का पाप उससे कम होता जाता है, इसलिए इसे परिग्रह का एक तरह से प्रायश्चित भी कहा गया है। परिग्रह के संग्रह एवं संरक्षण में हिंसा आदि अनेक दोष या पाप लगते हैं। अतः परिगृहीत वस्तुओं को करुणा और उदार भाव से दूसरों को देकर हम अपनी हृदय विशुद्धि करते हैं इससे आत्मा में निर्मलता आती है। अब दान धर्म की उत्पत्ति कब और किन संयोगों में हुई इसकी भी थोड़ी जानकारी कर लेना आवश्यक है।

जैनधर्म के अनुसार काल के ३-६ आरे हैं। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी अर्थात् उत्थान काल और पतन काल भी क्रमशः होता है उस क्रम को ६ विभागों में बांट दिया गया है। वर्तमान काल उत्सर्पिणी अर्थात् क्रमशः पतन का काल है। ३ आरों में मनुष्य युगलिक होते थे अर्थात् स्त्री और पुरुष का जोड़ा साथ में ही जन्म लेता था, बड़े होने पर वे पति-पत्नी का व्यवहार करते और अन्तिम आयु में उनके भी एक जोड़ा उत्पन्न होता। उस समय के उन युगलिकों की आवश्यकताएं अल्प थी और वे वृक्षों के [illegible] जिनके पास अधिक संग्रह था, उनके हृदय में अनुकम्पा या दया का भाव उत्पन्न हुआ और दुखियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने उपार्जित या संग्रहीत वस्तुओं का वितरण या दान शुरू किया। जिससे समाज में विषमता न बढ़ने पाये और सभी सुख शांति पूर्वक अपना जीवन यापन कर सकें। समाज में एक व्यक्ति अपने बुद्धि, सत्ता एवं शक्ति के बल पर वस्तुओं का बहुत अधिक संग्रह करले और उनका उपयोग केवल अपने स्वार्थ के लिए करे तो जिनके पास उन वस्तुओं की कमी है, उनको वह अखरेगा ही। उनके हृदय में दाह, जलन या ईर्ष्या होगी ही। मौका लगने पर वे चोरी, डकैती द्वारा भी सम्पत्तिशाली व्यक्ति की सम्पत्ति छीनने का प्रयत्न करेंगे। और इससे समाज में अव्यवस्था, अनीति एवं विशृङ्खला बढ़ती है।

दान का एक सूत्र है "दानः सम-विभागः" अर्थात् जिसके पास जो वस्तु अधिक है वह जिनके पास उनकी कमी है, उनको बांट दे अपने पास जो कुछ अधिक है उसे दूसरों को देकर अपने समान बनाले यह समान बना लेने की भावना ही वास्तव में दान है। समाजवाद या साम्यवाद सभी का मूल इसी सूत्र में कहा हुआ है। यदि इस तरह सम-विभाजन होता रहे तो फिर विषमता अशांति और दुःख रह ही नहीं सकते। [illegible] तो अन्त नहीं, पर बीज साधन व समय पाकर उगेंगे ही। पर दान देने के लिए किस समय, किस वस्तु की, किसे, कितने परिमाण में आवश्यकता है उसका विवेक रखा जाना भी आवश्यक है। इसीलिए पात्र और अपात्र का विचार, समय असमय का ध्यान रखना आवश्यक बतलाया गया है। जिस समय जिस प्रकार के दान की आवश्यकता होती है उस समय वैसा ही दान देने से अधिक फल मिलता है।

उदाहरणार्थ—दुष्काल या दुर्भिक्ष के समय अन्नदान की सबसे बड़ी आवश्यकता है। उस समय ज्ञान दान आदि अन्य दान उतने फलप्रद नहीं होते। "भूखे भजन ना होई गोपाला" और जिस समय मनुष्य अनैतिक आचरण करता है उस समय सद् शिक्षा का दान अधिक उपयोगी [illegible] रोगी के लिए औषध दान [illegible] अधिक आवश्यक है। मारे जा[illegible] पशु-पक्षियों एवं मनुष्यों को [illegible] दान या जीवन-दान सबसे [illegible] आवश्यक है। उस समय उसे [illegible] रुपये का दान दिया जा[illegible] वाला व्यक्ति यही कहेगा [illegible] मैं स्वयं जिन्दा नहीं रहूंगा, तो इन रुपयों को लेकर क्या करूं? इसलिए दान के अनेक प्रकार बतलाये हैं और काल तथा पात्र को देखकर किये गये दान श्रेष्ठ दान कहा गया है।

जैन ग्रन्थों में भी दान के अनेक प्रकार बतलाये गये हैं। उनमें श्रेष्ठ [illegible]

[illegible] का अभाव दब सा जाता है। इस लिए उसे अधर्म कहा गया है। हिंसा और अहिंसा की वास्तविक व्याख्या भी यही है। दूसरे के हिंसा करने से पहले अपनी आत्मा दुर्भाव ग्रस्त होती है, मन में राग-द्वेष परिणाम उत्पन्न होते हैं यही वास्तव में हिंसा है। दूसरे जीवों की हिंसा का प्रसंग आये या न भी आये पर अपनी हिंसा तो अपने बुरे परिणामों से हो ही जाती है। परमतत्वज्ञ श्रीमद् देवचंद जी ने अध्यात्म गीता में कहा है—"आत्म गुण रक्षणा तेह धर्म, स्वगुण विध्वंशना ते अधर्म"।

आतम गुण ने हणतो,
हिंसक भावे थाय।
आतम धर्मनो रक्षक,
भाव अहिंस कहाय॥

जैनधर्म में धर्म के १० प्रकार बतलाये हैं जिनकी पर्यूषणों में उपासना की जाती है। उनमें परिग्रहादि का त्याग भी एक धर्म है। दान त्याग का ही एक प्रकार है। अतः यहाँ दान धर्म पर कुछ विचार उपस्थित किये जाते हैं—

अन्न, वस्त्र, धन, आदि पौद्गलिक पदार्थों का अधिकाधिक संचय करके उनको अपना मानते हुए ममत्व या मोह रखना ही परिग्रह है। और उनसे अपना ममत्व हटाकर जरूरत मन्द लोगों को उन वस्तुओं को दे देना ही दान है। दानधर्म का [illegible] किया गया है। वर्तमान काल उत्सर्पिणी अर्थात् क्रमशः पतन का काल है। ३ आरों में मनुष्य युगलिक होते थे अर्थात् स्त्री और पुरुष का जोड़ा साथ में ही जन्म लेता था, बड़े होने पर वे पति-पत्नी का व्यवहार करते और अन्तिम आयु में उनके भी एक जोड़ा उत्पन्न होता। उस समय के उन युगलिकों की आवश्यकताएं अल्प थीं और वे वृक्षों के द्वारा ही पूरी हो जाती थी। उन्हें कल्प वृक्ष अर्थात् मन इच्छित फल देने वाला कहा गया है। उस समय किसी को न दान देने की आवश्यकता थी, न दान लेने की। क्योंकि जीवन की आवश्यकताएं बहुत थोड़ी थी और वे सहज रूप में ही पूर्ति हो जाने से सब अपने आप में मस्त थे। पर काल की विषमता से एक ओर उनकी आवश्यकताएं बढ़ी दूसरी ओर उन वृक्षों की फलदान शक्ति कम हो गई। अतः परस्पर में झगड़े फिसाद तथा चोरी आदि दुर्गुण उत्पन्न हुए, फिर क्रमशः युग ने पलटा खाया। युगलिक काल व्यवस्था समाप्त हुई प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने पुरुषों की ७२ और स्त्रियों की ६४ कलाएं सिखा कर नवयुग प्रवर्तन किया। तब अपनी बुद्धि और उपार्जन शक्ति से किसी ने आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का उत्पादन और संग्रह कर लिया और मंद बुद्धि व शक्ति वाले पिछड़ गये। उनकी दयनीय अवस्था को देखकर [illegible] अधिक है वह जिनके पास उनकी कमी है, उनको बांट दे अपने पास जो कुछ अधिक है उसे दूसरों को देकर अपने समान बनाले यह समान बना लेने की भावना ही वास्तव में दान है। समाजवाद या साम्यवाद सभी का मूल इसी सूत्र में कहा हुआ है। यदि इस तरह समविभाजन होता रहे तो फिर विषमता अशांति और दुःख रह ही नहीं सकते। तृष्णा का तो अन्त नहीं, पर जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति तो सभी की होनी चाहिए। इस भावना से ही विचारक पुरुषों ने दान को एक विशेष धर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया और सभी व्यक्तियों को प्रेरणा दी कि अपने पास जो आवश्यकता से अधिक है उसे जरूरतमन्दों को देते रहिये। यावत् स्वयं दुःख उठाकर भी दूसरों का दुःख मिटाइये घटाइये। आखिर सम्पति किसी के साथ जाने वाली नहीं है। अतः उसका सदुपयोग अपने हाथ से कर लेना ही जीवन की सार्थकता है। हमने उसका मोह न छोड़ा तो भी अन्त में उन वस्तुओं को तो हमें छोड़ना ही पड़ेगा। और विचार करने पर वास्तव में पराया कोई है ही नहीं, विश्व के समस्त प्राणी अपने ही हैं तो सबको सुखी बनाना हमारा धर्म हो जाता है।

दिया हुआ दान कभी व्यर्थ नहीं जाता। आज नहीं तो कल, उसका फल स्वयं मिलने वाला है। बोये हुए [illegible] आवश्यक है। उस समय एक [illegible] रुपये का दान दिया जा[illegible] वाला व्यक्ति यही कहेगा [illegible] मैं स्वयं जिन्दा नहीं रहूंगा, तो इन रुपयों को लेकर क्या करूं? इसलिए दान के अनेक प्रकार बतलाये हैं और काल तथा पात्र को देखकर किये गये दान श्रेष्ठ दान कहा गया है।

जैन ग्रन्थों में भी दान के अनेक प्रकार बतलाये गये हैं। उनमें श्रेष्ठ चार हैं १–अभय-दान, २–सुपात्र-दान, धर्मोपकरण-दान, ३–ज्ञान-दान और ४–अनुकम्पा-दान। दुःख या मरण से भयभीत प्राणी को मरण भय से रहित करना, अभय दान है। साधु या सत्पुरुषों को आहार, पानी, वस्त्र, पात्र, औषध आदि धर्मोपकरण देना सुपात्र दान है। इससे वे धर्मध्यान [illegible] शांति के साथ आगे बढ़ सकते हैं। स्वपर का अधिक कल्याण कर सकते हैं। ज्ञान देना, सत्शिक्षा देना, पढ़ने पढ़ाने वालों की सहायता करना, पढ़ने के लिए आवश्यक साधन सामिग्री, पुस्तक, शिक्षक जुटा देना, विद्यार्थी को निश्चिंत होकर पढ़ने के लिए उसके खाने पीने, वस्त्र पहने रहने आदि की उचित व्यवस्था कर देना [illegible] दान के विकास में अधिकाधिक योग देना, ज्ञान-दान है। अज्ञान के कारण मनुष्य जीवन में अंधकार छाया रहता है। अतः ज्ञान के प्रकाश की विशेष आवश्यकता है।

(शेष पृष्ठ २२ पर)

(पृष्ठ २० का शेषांश)

दुःखी की पीड़ा या दुःख को देखकर हृदय में करुणा उत्पन्न होना, कँपकँपी सी छूटना, उसके कष्ट निवारण के लिए हर प्रकार का प्रयत्न करना — अनुकम्पा दान है। इन सभी दानों में प्रतिफल की भावना नहीं होनी चाहिए। दान देकर अहंकार करना और पश्चाताप करना दान के महान फल को खो देना है। इसलिए कवि ने बहुत सुन्दर कहा है-कि दाता हर समय यही विचार करे कि सबको परमात्मा या व्यक्ति के कर्म ही निभा रहे हैं या दे रहे हैं। मैं देने वाला कौन ? मेरे को भी जो चीज प्राप्त हुई हैं वह किसी न किसीने मुझे दी ही है। मैं भी बहुत अधिक व्यक्तियों का उपकृत हूँ। उनकी कृपा से ही मैं इस योग्य बना हूँ। अतः देने वाला सभी को दे रहा है, मैं तो केवल निमित्त मात्र हूँ। मेरा अभिमान व्यर्थ है।

दान में दिखावा और नाम की कामना ही बहुत अयोग्य है। मैं किसी का उपकार कर रहा हूँ ऐसा भाव भी दाता में नहीं होना चाहिए। कर्त्तव्य की भावना से गुप्त रूप में दिया हुआ दान ही श्रेष्ठ दान है। दान देने से नाम तो होगा ही पर इसके लिए [illegible] कि यह तो उन्हीं का हक था और उन्हीं को दे दिया इसमें मैंने विशेष बात क्या की। परिग्रह के पाप से मैं हलका हुआ अतः लेने वाले का उपकार माने।

हमारी वर्तमान दान प्रणाली में अनेकों ऐसे दोष घुस गये हैं जिनके कारण हम दान के वास्तविक फल से वंचित रह जाते हैं। दान का फल भावना पर ही निर्भर है पर आज का अधिकांश दान हृदय की भावनाओं पर अवलम्बित न होकर दूसरे के दबाव व अपनी स्वार्थ सिद्धि एवं नाम के लिए होता है। कोई साधारण व्यक्ति किसी के पास जाकर अपनी वास्तविक आवश्यकता बतलाते हुए मांगता है तो उसे दुत्कार व फटकार मिलती है पर कोई बड़ा आदमी चन्दे के लिए जाता है तो उसके लिहाज से, दबाव से या अपने कभी ये काम आयेंगे, इनसे कुछ काम निकलने की आशा है तो उन्हें रकम देने में भी हिचकिचाहट नहीं होगी। इसीलिए आज बहुत से जरूरी और अच्छे काम आवश्यक द्रव्य या साधनों के न मिलने से पूरे नहीं हो पाते और दूसरी तरफ दान का अपव्यय भी होता है। क्योंकि देने वाला व्यक्ति तो देकर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री [illegible]

कागज की कीमत डेढ़ी हो जाने पर भी

चतुर्मास में मूल्यों में भारी कमी

रेल विभाग ने पुस्तकों का भाड़ा आधा कर दिया है अतः अधिक मंगानेवालों को पुस्तकों पर आधा खर्च पड़ेगा

बृहज्जिनवाणी संग्रह–सचित्र पृष्ठ ८०८, कपड़े की जिल्द ७॥) का अर्द्ध मूल्य ३॥।) में। ६ प्रति से १०० प्रति तक लेने से ३।) में।

पाण्डवपुराण—शास्त्र, खुले पत्र, बड़े अक्षर, १०) का ५) में।

प्रद्युम्नचरित्र–शास्त्र, खुलेपत्र, बड़े अक्षर, १०) का ५) में।

विमलपुराण—शास्त्र, खुलेपत्र, बड़े अक्षर, ३) का २॥) में।

हमारे अन्य ग्रन्थ—सचित्र सुकमालचरित्र ।॥=), शीलकथा ।≡), दर्शनकथा ॥), दानकथा ।=), वीरबालक ॥=), सत्पथ ।), जैन बालरामायण ॥), नित्यपूजा ॥), सूत्रभक्तामर महावीराष्टक, मेरी-भावना ।), फिल्मी तर्ज पर सङ्गीतमाला भाग द्वि० =), तृ० =), च० =)॥, पं० =)॥, छटा ≡), चौबीसी रामचन्द्रपूजा १॥) वृन्दावनकृत १॥), बीस तीर्थंकरपूजा १॥), क्षमावणीपत्रिका १॥) सैकड़ा, क्षमावणी कार्ड २) सै,, दीपावलीपत्री १॥), कार्ड २), जैनबालबोधक प्र० ॥), द्वि० ॥), तृ० १), सूत की माला दाने की ।-), गांठों की =), अन्य ग्रंथों के लिये सूचीपत्र मंगवाईये। रेल स्टेशन का नाम अवश्य लिखें।

पता:—

नेमीचंद बाकलीवाल, पो. मदनगंज (किशनगढ़)

का उपकार कर रहा हूँ ऐसा भाव भी दाता में नहीं होना चाहिए। कर्त्तव्य की भावना से गुप्त रूप में दिया हुआ दान ही श्रेष्ठ दान है। दान देने से नाम तो होगा ही पर इसके लिए दाता को यश की इच्छा नहीं करनी चाहिये। उसे तो अपने हृदय की पुकार पर ही ध्यान देना चाहिए। वास्तव में आवश्यकता से अधिक जो संग्रह हुआ है उसमें सभी का भाग है। किन्हीं व्यक्तियों की आवश्यकता में से कटौती होकर ही एक व्यक्ति के पास अधिक संग्रह होसका है इसीलिए कहा गया है कि सज्जन की कमाई में सभी का सीर है। यह अपनी संपत्ति में सभी का भाग माने तो उसे अभिमान नहीं होगा ऐसा विचारे

आवश्यक निवेदन

श्री जम्बूस्वामी सिद्धक्षेत्र चौरासी मथुरा में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा शीघ्र ही होना निश्चित हुआ है उसके साथ ट्यूबवेल, बिजलीफिटिंग, जीर्णोद्धार जो कि पंच कल्याण प्रतिष्ठा के लिये अत्यन्त आवश्यक है, पूर्ण होना है। इस महानकार्य में पवित्र पर्यूषण पर मुक्त हस्त से दान दीजियेगा।

पंचकल्याणक के लिये १०१) रु० के मैम्बर बना रहे हैं। जिनमें २२ मैम्बर अभी तक बन चुके हैं। अतः समाज के दानी महानुभावों से प्रार्थना है कि मैम्बर बनकर अतिशय पुण्य संचय करें।

— किशोरीलाल जैन, मुनीम

आज बहुत से जरूरी और अच्छे काम आवश्यक द्रव्य या साधनों के न मिलने से पूरे नहीं हो पाते और दूसरी तरफ दान का अपव्यय भी होता है। क्योंकि देने वाला व्यक्ति तो देकर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है, उसका ठीक से उपयोग हो रहा है या नहीं इसकी जानकारी प्राप्त नहीं करता। इधर चन्दा या दान ले जाने वाले व्यक्ति भी बहुत बार स्वयं गड़बड़ी कर देते हैं या दूसरों के भरोसे छोड़ देने से, बिना सार संभाल के दाता की रकम का सदुपयोग नहीं हो पाता। इन सब बातों का ध्यान रखा जाय तो दान-धर्म समाज कल्याण के लिए परमावश्यक एवं लाभप्रद होगा।

आवश्यकता—पुजारियों की जो पूजन करना जानते हों लिखें या मिलें।

मैनेजर—तीर्थक्षेत्र कमेटी
सोनागिर, (दतिया)

वीर सेवा मन्दिर सोसाइटी

दिल्ली का जनरल अधिवेशन ता० ३०-८-५६ को श्री रा० सा० उलफतरायजी की अध्यक्षता में हुआ, जिसमें पदाधिकारियों के चुनाव में अध्यक्ष-श्री बा० छोटेलालजी जैन कलकत्ता, उपाध्यक्ष-श्री रा० सा० उलफतराय जी, देहली, मंत्री-श्री बा० जयभगवानजी जैन एडवोकेट पानीपत, संयुक्त मंत्री-श्री बा० प्रेमचंदजी जैन बी. ए. और ऑडीटर श्री बाबू देवकुमारजी पानीपत चुने गये।

—जयन्तीप्रसाद शास्त्री

गांठों की =), अन्य ग्रंथों के लिये सूचीपत्र मंगवायिये। रेल स्टेशन का नाम अवश्य लिखें।

पता:—

नेमीचंद बाकलीवाल, पो. मदनगंज (किशनगढ़)

पर्वराज पर्यूषण पर्व में

श्री देशभूषण कुलभूषण ब्रह्मचर्याश्रम

कुन्थलगिरी (उस्मानाबाद)

पुरानी संस्था को अवश्य दान दीजिये

उदार दानी सज्जनों से निवेदन है कि यह आश्रम वीरसंवत् २४३६ में "ज्ञानेन पुंसां सकलार्थ सिद्धिः" इस आर्ष वचन को सामने रखकर अज्ञानपीड़ित छात्रों को ज्ञान-दान देकर संसार में आदर्श गृहस्थ बनाने के उद्देश्य से श्री स्व० ब० पार्श्वसागरजी ने स्थापित किया है। इसमें मुख्यतः धार्मिक शिक्षण के साथ इंगलिश, मराठी तथा हिंदी और व्यायामसंगीतादिका शिक्षण दिया जाता है। संस्था ने आज तक करीब १००० छात्रों को सुशिक्षित बनाया है। इस समय संस्था में ४० छात्र तथा ५ शिक्षक हैं। महंगी के कारण खर्च अधिक और आमदनी कम होने से संस्था को प्रतिवर्ष घाटा रहता है। संस्था की जीवन नौका डगमगा रही है। अतः संस्था का रक्षण करना आपका परम कर्तव्य है।

स्व० परमपूज्य श्री १०८ महातपोनिधि चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज का उनकी उपस्थिति में शुभाशीर्वाद लेकर ही आश्रम का ध्वजारोहण किया गया था।

इस वर्ष श्री प० पू० गुरुदेव समंतभद्रजी महाराज का चतुर्मास यहीं हो रहा है। आश्रम पर इनका पूर्ण शुभाशीर्वाद है।

आप भी आचार्य महाराज के परम भक्त हैं। आप इस पर्यूषण पर्वराज के सुवर्ण अवसर पर उदार सहायता भेजकर चारों दानों का पुण्य संपादन कीजिये। निवेदक—

माणिकचंद वीरचंद शहा, मंत्री, मोतीलाल हिराचंद गांधी, स.

णमोत्थुणंसमणस्स भगवओ सुहसायरस्स सयंसं बुद्धस्स सिरि वद्धमाणस्स
ॐ ह्रीं श्री नवांगवृत्तिकर श्री अभयदेव सूरिश्वर सद्गुरुभ्यो नमोनमः
सुखको दुःखको जानकर तत्रोपप्रमाद विशेष। उठोकरो कर्तव्यको यही अभय—सन्देश ॥

संस्कृति--समाज और राजनीति की चर्चा में अग्रसरः--जैन समाज का प्रमुख

अभय-संदेश

'साप्ताहिक-पत्र

सम्पादक--
बच्ची चम्पालाल जैन.

वर्ष २ अंक २७ बीकानेर सं २०१३ मा. कृ. २ गुरु. १७-१-५७ भेट पु० २ सहित वार्षिक ४) प्रति

No 163

दादावाड़ियों का विवरण भेजकर सहयोग दीजिये

लेखक—श्री अगरचन्द नाहटा

खरतरगच्छ के महान आचार्य लब्धप्रतिष्ठ नये जैन बनाने वाले श्री जिनदत्त सूरिजी बड़े दादाजी के नाम से विख्यात हैं। इनके शिष्य व पट्टधर मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी युवावस्था में ही दिल्ली में स्वर्गवासी हो गये, पर इनकी प्रतिमा असाधारण थी। तदनन्तर कई पट्टधरों के बाद श्री कुशलसूरिजी बड़े चमत्कारी हुए जो छोटे दादाजी के नाम से प्रसिद्ध हैं इनके कई पट्टधर आचार्यों के बाद सम्राट अकबर प्रतिबोधक और सम्राट के द्वारा ही युग प्रधान पद से विभूषित होने वाले श्री जिन चन्द्र सूरिजी चौथे दादा साहब कहलाते हैं। इनमें से प्रथम का स्वर्गवास संवत् १२११ में अजमेर में, दूसरों का संवत् १२२३ दिल्ली में, तीसरों का संवत् १३०५ देरावर में और चौथे दादाजी का संवत् १६७० बिलाड़ा में हुआ। वहां उनके स्तूप व गुरुमंदिर बनाये गये थे जिनमें से अजमेर और दिल्ली के तो आज भी सुरक्षित पूजित हैं। देरावर पाकिस्तान में चला गया और बिलाड़े के गुरु मंदिर की ठीक से देख भाल नहीं की गई। इन दादा गुरुओं की मूर्तियों व चर्ण पादुकाएं भारत के प्रायः सभी जैन श्वेताम्बर तीर्थों, प्रसिद्ध शहरों और बहुत से गांवों में भी पूजित हैं। कई स्थानों में तो जिन मंदिरों के के अन्दर ही गुरु मूर्ति व पादुकायें हैं, कहीं मंदिर में या पास ही बंगली या छतड़ी में स्थापित हैं। पर बहुतसे स्थानों में स्वतन्त्र दादा वाड़ियां भी हैं, जिनमें से कई बहुत ही विशाल हैं— काफी जमीन को घेरे हुए हैं और कईयों में बहुत सुन्दर गुरु मंदिर बने हुए हैं। कई दादा वाड़ियों के पीछे जमीन आबाद भी है, कईयों में धूप चन्दन पी आदि के लिए सरकारी देवस्थान महकमे से प्रति मास कुछ रुपये भी मिलते हैं। जनता के भक्तिभाव के केन्द्र इन दादावाड़ियों की सुव्यवस्था बहुत ही आवश्यक है। गत अजमेर महोत्सव के पहले मैंने एक लेख द्वारा समस्त गुरुभक्तों से निवेदन किया था कि वे अपने अपने स्थानों या अपने प्रदेश की दादावाड़ियों का ज्ञातव्य विवरण मुझे भेजें या पत्रों में प्रकाशित करते रहें और समस्त साधु साध्वी और श्री पूज्यजी व यति गण जीविवरण संग्रह में सहयोग दें। पर खेद है कि इस परमावश्यक कार्य की ओर बहुत ही उपेक्षा दिखाई गई। मुझे केवल इन्दौर का ही एक पत्र मिला।

अजमेर के महोत्सव में जिनदत्तसूरि सेवा संघ की स्थापना हुई, और उसके कार्यों में एक यह भी कार्य सन्निहित है कि दादावाड़ियों का विवरण संग्रह कर उन स्थानों की यथोचित सुव्यवस्था करें या करावें, पर इसके लिए सबसे पहिला काम यही है कि भारत के विभिन्न प्रदेशों में जो सैकड़ों दादावाड़ियां या गुरुमंदिर हैं। उनकी सूचि शीघ्र ही तैयार की जाय। मैंने इसका प्रारम्भ अजमेर में ही कर दिया था। वहां की पूजाओं आदि से कुछ स्थानों के नाम पूछकर नोट किए थे। पर उन स्थानों का विशेष विवरण तो स्थानीय व्यक्ति ही दे सकते हैं। अतः मैं इस लेख में मेरी जानकारी में जहां जहां दादावाड़ियां हैं, उन स्थानों की सूचि प्रकाशित कर रहा हूँ। अभी यह बहुत ही अपूर्ण है, अतः समस्त साधु-साध्वी, पूजाजी-यति, और गुरुभक्तों से पुनः अनुरोध करता हूं, कि वे इनके अतिरिक्त जहां जहां उनकी जानकारी में दादावाड़ियां हों, उनकी सूचना मुझे दें और कहां कहां पर किन किन दादाजी के मंदिर, मूर्तियां व चरणपादुकाएं किसके बनाई हुई, कब की व किसकी प्रतिष्ठित हैं, उसकी व्यवस्था कौन करते हैं, कुल आमदनी व खर्च है, उनके पीछे क्या जमीन जायदाद है इत्यादि सभी आवश्यक बातों की जानकारी भेज कर दादावाड़ियों का विवरण तैयार करने में सहयोग दें। संभव हो तो दादावाड़ियों में जो मूर्तियें व चरणपादुकाएं हों उनके शिलालेखों की पूरी नकलें भी भिजवा दें। जैन प्रतिमा लेखों के संग्रह ग्रन्थों में जितने लेख छपे हैं वे तो मैं संग्रह कर ही लूंगा और बीकानेर राज्य के तो समस्त लेखों का संग्रह तो हम प्रकाशित ही चुके हैं। सबने उत्साह पूर्वक सहयोग दिया तो यह काम सुगमता से हो सकेगा। अन्यथा सब जगह किसी एक व्यक्ति का पहुंचना संभव नहीं। अतः कार्य अधूरा ही रह जायगा।

मुझे ज्ञात स्थानों का नाम इस प्रकार है:— बीकानेर, कदराणसर, नाल, देशनोक, रतनगढ़, सुजानगढ़, सरदारशहर, चूरू, दिल्ली, फतेहपुर, झुंझनु, जयपुर, मालपुरा, जैसलमेर, देवीकोट, मालवर, राजकरसाणा, अलवर, दिल्ली, आगरा, मद्रास, कालूपुर, पटना, केशरियानाथजी, पालिताणा, अहमदाबाद, बम्बोर, डायरस, कानपुर, हापुड़, नेमपुर, किशनगढ़, बदयपुर, अजमेर, चमापुरी, हैदराबाद, बंबई, टोंक, सांगानेर, कलकत्ता, बाड़मेर, चलोतरा, गुढ़ा, पाटोदी, पंचभद्र, टोंग, जालोर, साचोर, पल्लोदी, लीयन, लोहावट, सेनथा, ओसियां, पिलादा, सोजत, नेवारण, पार्श्वनाथ-फलोधी, मेड़ता, नागौर, रतलाम, जोधपुर, सूरत, भादरा, बड़ौदा, पूना, नारनोल, रूपनगर, ब्यावर, पिड़ावा, माकड़, फारबीसगंज, प्रतापगढ़, धेनकरा, रायपुर, नागपुर, रानिम, बरेली, मंदसोर, उज्जैन, बदनावर, मियाईदा, भीलवाड़ा, भागलपुर, कन्द आदि इनमें कई मंदिरों में भी है। इसी तरह दादा गुरु के स्तवन स्तोत्र भी सैकड़ों मिलते हैं इनका भी संग्रह किया जा रहा है इसमें भी सहयोग दें।

चार सार्वजनिक पुस्तकालयों को पुस्तकें

देश में चार सार्वजनिक पुस्तकालय स्थापित करने के लिए भारत सरकार ने एक अधिनियम बनाया है, जिसका नाम पुस्तक पंजीयन (सार्वजनिक पुस्तकालय) अधिनियम १९५४ है। यह अधिनियम २० मई १९५४ से लागू हुआ है। इसके अनुसार सभी प्रकाशकों को २० मई १९५४ के बाद प्रकाशित अपने सभी प्रकाशनों की एक एक प्रति कलकत्ता के राष्ट्रीय पुस्तकालय तथा तीन अन्य सार्वजनिक पुस्तकालयों को भेजना आवश्यक है। इन तीन पुस्तकालयों के नाम भारत सरकार घोषित करेगी।

अधिनियम की धारा २ (ख) के अनुसार भारत सरकार ने मद्रास के कोनेमरा सार्वजनिक पुस्तकालय और बम्बई के केन्द्रीय सार्वजनिक पुस्तकालय (टाऊनहाल) को क्रमशः १० सितम्बर १९५५ और ४ नवम्बर १९५४ से सार्वजनिक पुस्तकालय घोषित कर दिया है।

इसलिए सभी प्रकाशकों को चाहिए कि वे अपने समस्त प्रकाशनों की एक एक प्रति कलकत्ता के राष्ट्रीय पुस्तकालय को, और जिस दिन से मद्रास और बम्बई के उक्त पुस्तकालयों के सार्वजनिक पुस्तकालय होने की घोषणा हुई है उस दिन से उन दोनों पुस्तकालयों को भेजें। इन दोनों पुस्तकालयों के सार्वजनिक पुस्तकालय घोषित होने के बाद २० दिन के भीतर जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, वे भी भेजी जानी चाहिये।

पिछले ५ वर्षों से यह अधिनियम लागू है, परन्तु प्रकाशक इसका पालन नहीं कर रहे हैं। अतः भारत सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि जो प्रकाशक अपने प्रकाशनों की प्रतियां उक्त तीनों पुस्तकालयों को नहीं भेजेंगे, उन पर कानूनी कार्यवाही की जायेगी।

यह सूचना शिक्षा मंत्रालय की एक विज्ञप्ति में दी गई है।

पुरानी और नयी कलावस्तुओं की खरीद

नयी दिल्ली में राष्ट्रीय संग्रहालय और राष्ट्रीय आधुनिक कलाकृतियों के लिए चित्र, मूर्तियाँ, पाण्डुलिपियां वस्त्र आदि पुरानी और नयी मूल्यवान कला वस्तुयें खरीदने के वास्ते १५ तथा २६ फरवरी १९५७ की कला वस्तु-क्रय समिति की बैठक एगमोर (मद्रास) के सरकारी संग्रहालय में होगी। यदि आवश्यकता हुई तो यह बैठक १८ फरवरी को भी होगी।

जो लोग कला वस्तुयें बेचना चाहते हों, वे उनकी पूरी सूचि और मूल्य लिख कर ३० जनवरी १९५७ तक डा० विक्रमसिंह, सहायक शिक्षा सलाहकार, शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार नयी दिल्ली को भेज दें। सूचि की एक प्रति डा० ए० अच्युन सुपरिण्टेण्डेण्ट गवर्नमेंट म्युजियम एगमोर, को भी भेजी जाना चाहिये।

जो लोग कलावस्तुयें बेचना चाहते हों, वे उन्हें अपने खर्चे पर और अपनी जिम्मेवारी पर डाक द्वारा या अपने प्रतिनिधि द्वारा सुपरिटेंडेंट गवर्नमेंट म्यूजियम, एगमोर मद्रास के पते पर भेज सकते हैं, अथवा स्वयं ले जा सकते हैं।

श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ में चौरी

नाकोड़ा (डाक से) गत रविवार की रात को श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ में चौरी हो गई। जिसमें करीब १५००) २००) का माल चला गया है। भगवान के ४ मुकुट कुंडल नेत्र व आड़ व चांदी के सिंहासन में से ऊपर के तीन सिरे व छतरी के ऊपर का शिखर और मैरुजी के भंडार भी तोड़ डाला गया। श्री आदेश्वरजी के मंदिर में जरमन सिलवर का भंडार भी चोर ले गये जो पास फेंक दिया। पुलीस मामले की तहकीकात कर रही है अभी तक चोरों का पता नहीं चला है।

नरहड़ गांव में भूगर्भ से २ जैन मूर्तियाँ प्राप्त होने पर गांव वाले ने जैनियों को नहीं दी

झुन्झुनू (डाक से) पीलाणी से ४ माइल दूर नरहड़ गांव में पोह सुदी १ मंगलवार को २ जैन मूर्तियाँ भूगर्भ से गांव वालों को प्राप्त हुई। झुन्झुनू में खबर पहुंचने पर वहां के जैन भाई मूर्तियाँ लेने के लिए नरहड़ गांव गये। मगर गांव वालों ने मूर्तियाँ देने से इन्कार कर दिया। करीब ४० साल पहिले इसी गांव से एक मूर्ति भूगर्भ से प्राप्त हुई थी जो झुन्झुनू ले जाई गई थी। जो अभी मौजूद है। यह दोनों मूर्तियाँ श्याम वर्ण के कसौटी पत्थर की है एक प्रतिमाजी पर संवत का चिन्ह है दूसरी पर कछवे का है। कछवे के चिन्ह वाली प्रतिमा जी को भूमि से निकालते समय दाने हाथ की अंगुलियों का कुछ हिस्सा खंडित हो गया। यह गांव बहुत प्राचीन बताया जाता है। शोध कराने पर और भी मूर्तियाँ प्राप्त हो सकती है। जेपुर पास में ही है अतः जेपुर व झुन्झुनू के श्रावकों को मूर्तियाँ लाने का प्रयत्न करना चाहिये।

आडम्बरों से सावधान

लेखक—माणक 'कोविद'

तेरापन्थी समाज के अणुव्रत प्रचारक आचार्य श्री तुलसी जी ने गत दिनों भारत की राजधानी नयी दिल्ली में अणुव्रत सप्ताह का आयोजन करके देश व विदेश के बड़े बड़े नेताओं को पाम्पलेट दिये, भाषण दिलाये। अखबारों में पैसे के बल पर खूब धुंआधार प्रचार कराया। इसी प्रकार स्थानक वासी समाज के प्रसिद्ध मुनि श्री सुशीलकुमारजी भी दिल्ली पहुँचे हैं। वे भी महात्मा गांधी के मृत्यु दिवस से अहिंसा का प्रचार कार्य कर रहे हैं। वहां पर प्रचार कार्य शुरू हो गया है। यह सब आडम्बर है। इन महारथियों के भोले भक्तों के लाखों की स्वाहा करने पर भी एक भी जैनी नहीं बना है। जबकि हमारे समाज के एक साधारण व्यक्ति ने आत्मिक रुचि से बिना किसी आडम्बर व पैसे की बरबादी के हजारों भीलों को जैनी बना डाला है। यह है भगवान महावीर के सच्चे प्रचारक का प्रत्यक्ष कार्य। ठोस कार्य करनेवाले आडम्बरों में नहीं जाते हैं। श्री भद्रमुनिजी वनों में साधना में लगे हुए हैं जिनकी सेवा में देव हर समय उपस्थित रहते हैं। मगर वे कभी अपना आडम्बर में आना पसन्द नहीं करते।

सम्मेलन के नाम पर हजारों खर्च करनेवाले सहयोगी को बलिदान क्यों कर रहे हैं

गत दिनों में जब भीनासर (बीकानेर) में स्थानकवासी समाज का सम्मेलन हुआ था। उस समय स्थान की संगाई की वजेह से भीनासर के श्री मगनलालजी गुलाबचंदजी सेठिया की कोटड़ी इस शरत पर लीगई थी। जो इमारतें व दिवारें तोड़ी जायगी व वाकिफ बना कर देनी जायगी या नगद रुपयों में उनका हरजाना दे दीया जायगा। अपनी अपनी आवश्यकता पुरी करने के लिए कोटड़ी की दिवारें व कुछ तोड़ा गया जिसमें करीब १०-१२ हजार का नुकसान सेठियाजी का हुआ है। मगर अब ४ हजार देकर पीछा छुड़वाना चाहते हैं। धर्म के नाम पर सहयोग देनेवालों के साथ इस तरह की धोखा बड़ी कलंक है। ☞ सूचना— वार्षिक भेंट पुस्तक छपा कर देने के कारण दो सप्ताह पत्र प्रकाशन नहीं हो सकेगा।

सम्पादक—

दान धर्म की आवश्यकता

(लेखक—श्री अगरचन्द जी नाहटा)

विश्व के समस्त प्राणियों का जीवन परस्पर है। दूसरों की सहानुभूति और सहयोग से ही आगे बढ़ते हैं। सबसे पहले तो जब प्राणी गर्भ में आता है माता उसे प्रेम और बल से पोषण करती है। जन्म होने के बाद भी कुछ समय तक उसका जीवन माता के ही आश्रित रहता है, फिर उसे अन्य लोगों का सहयोग मिलता है और इस तरह बहुत से व्यक्तियों से वह बहुत कुछ सीखता है और सहयोग प्राप्त करता है। यह एक तरह से दूसरों का सहयोग दान ही हुआ। स्वाभाविक रूप से यह क्रिया चलती है, इसलिए चाहे इसे दान न कहें, पर सहयोग देना भी दान ही है चाहे वह किसी तरह का हो। जब इतने अधिक व्यक्तियों के सहयोग से हम अपने जीवन को आगे बढ़ाते हैं, तो हमारा भी कर्तव्य हो जाता है कि हम भी दूसरों के काम में आकर उन को आगे बढ़ाने में सहयोग दें। यह तो हुई सामान्य दान धर्म की बात।

सभी मनुष्य एक-जैसी योग्यता, शक्ति और साधन सम्पन्न नहीं होते इसलिये जिनके पास जिस विषय की अधिक योग्यता, शक्ति एवं साधनों की प्रचुरता है, वे जिनके पास इन में से जिनकी कमी है उनको देते रहें तो दूसरों का जीवन भी सुखी बन जाय। करुणा और उदारता का भाव दान-धर्म का मूल स्रोत है। दुखी या दरिद्र तथा भूख-प्यासे पीड़ित और वस्त्र एवं निवास रहित व्यक्ति को देख कर हमारे मन में करुणा का संचार होता है और अपने हृदय की पुकार से अपने से जो कुछ भी बनता है, उसे देकर हम आत्मसंतोष पाते हैं। इसी तरह हमारे पास जो चीजें हैं, उन्हें हम जिनको उनकी आवश्यकता है, उन्हें देकर उदारता दिखायें तो दूसरों को जीवन यापन या अपनी प्रगति में काफी मदद मिलेगी।

सम्पत्ति की तीन अवस्थाएँ होती हैं—भोग, दान और विनाश। भोग की एक सीमा होती है, उसका उल्लंघन अधिक परिमाण में होने पर हानि ही होती है। पर दान अपनी सामर्थ्य के अनुसार देने से अपने चित्त की प्रसन्नता और दूसरों को आराम मिलता है, जब कि भोग में केवल अपना सुख-भोग ही मुख्य होता है। यदि भोग और दान दोनों में उस सम्पत्ति का उपयोग नहीं किया गया तो तीसरी नाश की अवस्था तो स्वयं प्राप्त हो जायगी। इस लिए भी जहां जितने दान की आवश्यकता है, पात्र और आवश्यकता के विवेक सहित दान देते रहना ही मानव कर्तव्य है।

उपनिषद् में एक कथा आती है, जिसमें राक्षसों के लिए दया, देवों के लिए दमन और मनुष्यों के लिए दान-धर्म का विशेषरूप से उपदेश दिया गया है, क्योंकि राक्षस क्रूर स्वभाव के होने के कारण हिंसा अधिक करते हैं, अतः उनके लिए दया-धर्म की विशेष आवश्यकता है। देवगण साधन-सुविधाओं की अधिकता के कारण भोगों में बहुत लिप्त रहते हैं, इसलिए उन्हें इन्द्रिय दमन का उपदेश दिया गया है। मनुष्य कर्माधिकार के प्राप्त कर्म द्वारा कमाई करने वाला है और मनुष्यों में दीन-हीन अवस्था वाले व्यक्ति अधिक हैं; अतः दान-धर्म की विशेष आवश्यकता है। जिससे कि सब लोगों का जीवन-यापन सुख-शान्ति पूर्वक हो सके।

प्रकृति भी हमें दान-धर्म का महान् सन्देश दे रही है। उसने प्राणियों के आराम के लिये अनेक साधन जुटा रक्खे हैं। वृक्ष हमें फल व छाया देते हैं। नदियां एवं बादल जल देते हैं। वनस्पतियां प्राणियों के खाने के काम आती हैं और रोग निवारणार्थ औषधियों के काम में आती हैं। सूर्य हमें प्रकाश देता है और गर्मी भी। वायु जीवन के लिए आवश्यक तत्त्व है ही; उसे लेकर ही श्वास चलता है। पृथ्वी हमारा अनन्त उपकार कर ही रही है। हम उसी के ऊपर रहते हैं, खेती करके उसी में से अनाज उत्पन्न करते हैं। इसी तरह अनेक रूपों में प्रकृति से हम अनेक सुविधाएँ स्वाभाविक रूप में प्राप्त कर रहे हैं। इसे प्रकृति की देन या दान ही कहा जा सकता है। यदि प्रकृति हमें ये सुविधाएँ न दे तो हम क्षण भर भी नहीं जी सकते। अतः प्रकृति की तरह हमें भी बिना किसी प्रकार के प्रतिफल की कामना के दान देना सीखना चाहिए। प्रकृति और अनेक व्यक्तियों से हम अनेक बातें तथा वस्तुएँ प्राप्त कर के अपने जीवन को सुखी बना रहे हैं। यह तो उनका केवल ऋण बढ़ाना ही हुआ। जैसे हम दूसरों से लेते हैं, वैसे दूसरों को दें भी। तभी हम उस ऋण से उऋण हो सकते हैं।

बहुत से व्यक्ति यह सोचते-समझते और कहते हैं कि हमारे पास ऐसी कोई चीज है ही नहीं कि हम उसे दूसरों को दें। जब कि हमारी आवश्यकताएँ भी हम पूरी नहीं कर पाते और उनके लिए दूसरों पर आश्रित हैं तो हम दूसरों को क्या दें? पर वास्तव में वे व्यक्ति जरा गहराई से सोचें तो मालूम होगा कि चाहे बाहरी पदार्थ उनके पास कम होने से वे दूसरों को न दे सकते हों पर दूसरों के काम में आनेवाली अनेक आवश्यक चीजें उनके पास हैं ही। वास्तविक दान-धर्म तो यह है कि अपने-अपने पास जो थोड़ी सी वस्तुएँ प्राप्त हैं, उनमें से भी, संयम और त्याग पूर्वक दूसरों को जितना भी दे सकते हों, कुछ न कुछ दें ही, जैसे हमारे पास खाने के लिए चार रोटियां हैं तो हम तीन से अपना काम निकाल कर एक आधी या पाव रोटी तो दूसरों को दे ही सकते हैं। भारतीय संस्कृति में तो ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं कि स्वयं भूखे रह कर भी दूसरों की क्षुधा निवृत्ति की गयी है। अतिथि के लिए घर में अपना स्थान करने के उदाहरण हमारे पुराणों और चरित्र-ग्रन्थों में मिलते हैं पर मान लीजिए हमारे मन की तैयारी उतनी नहीं है, तो भी हम सेवा और सहानुभूति, वात्सल्य, प्रेम आश्वासन देकर भी दूसरों के दुःख को कम कर सकते हैं, उन्हें सुख शान्ति पहुंचा सकते हैं। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं, जिसके पास देने की कुछ भी चीज न हो। जो पढ़ा लिखा है वह दूसरों को ज्ञान दान तो कर ही सकता है। जो विशेष पढ़ा लिखा नहीं उसके पास जीवन के अनुभव हैं ही, यदि वह उन अनुभवों से दूसरों का मार्ग-दर्शन करे, उन्हें सुशिक्षा दे, अपनी बुद्धि से उन कठिनाइयों को हल करने का प्रयत्न करे तो इसमें उसे कुछ श्रम या त्याग नहीं करना पड़ता और दूसरों को कुछ लाभ मिल जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को अनेक तरह की आवश्यकताएँ हैं और उन सब की किसी न किसी रूप में पूर्ति हर एक व्यक्ति किसी भी प्रकार से किसी अंश में अवश्य ही कर सकता है। केवल वस्तुओं का दान ही दान नहीं है; ज्ञान-शिक्षा का दान उससे भी बहुत बड़ा दान है। इसी लिए हमारे संत-महात्मा यद्यपि रोटी पानी हमसे लेते हैं और अपरिग्रही होने के कारण हमें कोई वस्तु दे नहीं सकते, पर सत धर्म का संदेश देकर वे हमारा महान उपकार करते हैं। जीवन निर्वाह के लिए थोड़ी सी भिक्षा लेकर हमें कितना बड़ा ज्ञान दान देते हैं।

सेवा भी एक विशिष्ट दान है और अनेक प्रकार से की जा सकती है। छोटे से लेकर बड़े तक सभी को किसी न किसी प्रकार की सेवा की आवश्यकता होती है। हम जिस व्यक्ति को जिस समय जिस प्रकार

की सेवा आवश्यक है, यदि विचार और विवेक पूर्वक उसे जानकर उसी प्रकार की सेवा में उसे थोड़ी सी भी शान्ति या सुख पहुँचा सके तो वह बहुत बड़ा दान होगा। बाहरी वस्तुओं के दान की अपेक्षा उसका मूल्य, महत्व और फल अधिक भी है।

त्याग भी दान का ही एक प्रकार है। जितने-जितने अंशों में हम अपरिग्रही और त्यागी बनेंगे, उतने अंश में जीवन यापन के साधन दूसरों के लिए सुलभ हो जायेंगे। संन्यास ग्रहण करते समय व्यक्ति जो कुछ अपना होता है, दूसरों को दे डालता है। इसी लिए उन वस्तुओं का दान तो हुआ ही, पर भविष्य में जिन वस्तुओं का, जितने परिमाण में वह उपभोग करने वाला था, त्याग स्वीकार करने पर वह उनका भोग नहीं करता, तब वे चीजें दूसरों को अधिक परिमाण में सहज प्राप्त हो जायेंगी। हमने जो अब तक आवश्यकताओं से अधिक संग्रह कर रक्खा है और ममत्व बुद्धि के कारण दूसरों को आवश्यकता होते हुए भी हम उन्हें वे वस्तुएँ दे नहीं रहे हैं, यह एक बड़ा पाप है और इस पाप का प्रायश्चित्त दान के द्वारा ही हो सकता है। आखिर हमने जो कुछ भी संग्रह किया है उसे उस परिमाण में प्राप्त करने में हमने दूसरों का सहयोग प्राप्त किया है, उनका शोषण किया है, दूसरों के जीवन यापन में कठिनाइयाँ उपस्थित की हैं, अपने सुख के लिए दूसरों को दुःख दिया है अतः हमारा परमावश्यक कर्तव्य हो जाता है कि अधिकाधिक दान धर्म को अपनावें।

मनुष्य कोमल और कठोर वृत्तियों का सम्मिश्रित पुञ्ज है। कोमल वृत्तियों से संसार का व्यवहार अधिक सुखद बनता है और कोमल वृत्तियों में करुणा और प्रेम विशेष महत्व रखते हैं, पर आज प्रेम विलुप्त हो चला है और करुणाभाव बहुत कुछ लुप्त होता जा रहा है। थोड़े वर्षों पहले हमारे देखते-देखते किसी भी दीन दुखी को देखकर हमारे हृदय में करुणा का उद्रेक होता था, वैसा आज नहीं होता! कोई भिखारी हमसे रोटी या पैसा माँगता है तो हम उसे दुत्कार देते हैं, बहुत बार तो धक्का देकर भी निकाल देते हैं। कुछ व्यक्तियों ने भिखारी के वेश में ठगाई की, इससे सब भिखारियों के प्रति अरुचि होती जा रही है। इसका दुष्परिणाम प्रत्यक्ष है कि हमारे अन्दर करुणा का स्रोत सूखता जा रहा है और वास्तविक अभावग्रस्त को भी हम समर्थ होते हुए भी कुछ सहायता नहीं कर पाते। पशुओं की हत्या और पिटाई इतनी निर्ममता से होने लगी है कि करुणा का तो मानो हमारे हृदय में कोई स्थान ही नहीं रह गया है।

दया भी वास्तव में देखा जाय तो दान का ही एक प्रकार है, क्योंकि जीवन-दान सब से बड़ा दान है और उसके लिये करुणा और दया-भाव की आवश्यकता है। जैन-ग्रंथों में अभय दान को बड़ा महत्व दिया गया है। हमसे किसी भी प्राणी को मरने या कष्ट का भय उत्पन्न हो और वह सुख-शान्ति पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करे—यही है अभय-दान। हमने उसको निर्भय या अभय का दान दिया है। किसी भी प्राणी को मारा न जाय, यह हुई उस प्राणी की जीवन-रक्षा। इसी का नाम है जीवन-दान और ऐसी उद्घोषणा करना ही अमारि उद्घोषणा करना है। जैनाचार्यों ने समय समय पर राजाओं और सम्राटों को प्रतिबोध देकर अमारिउद्घोषणाएँ करवायी थीं, उससे उनके राज्य में होने वाले हजारों लाखों प्राणियों के प्राण बच गये। हम भी अपनी ओर से पूरे सजग रहकर अनेकों प्राणियों की रक्षा सहज ही में कर सकते हैं। उनके लिये वह जीवन-दान है और हमारे लिये धर्म।

यदि हमारा किसी ने अपराध किया है तो हम उस अपराध के प्रतिशोध की भावना को भुला कर यदि उसे क्षमा कर देते हैं तो वह हुआ क्षमा-दान। इससे वैर विरोध का शमन होता है और दूसरे के चित्त को शान्ति मिलती है। अपना चित्त भी प्रसन्न होता है। एक तरह से इसे शान्तिदान भी कह सकते हैं।

जिस समय जिस प्रकार के दान की जिसको आवश्यकता हो, वैसा देना ही अधिक लाभप्रद है। हमारे मनीषियों ने कहा है कि अभी हमें जो सम्पत्ति और सुख के साधन मिले हैं, वे प्रायः दानधर्म के कारण ही। जो देता है, वह पाता है। जो बीज बोता है उसे ही उसका फल मिलता है। दान से पुण्य होता है, पुण्य से वैभव और साधन-सुविधाएँ मिलती हैं।

पद्मपुराण में कहा गया है—

सुदानात् प्राप्यते भोगा,
सुदानात् प्राप्यते यशः।
सुदानाज्जायते कीर्तिः,
सुदानात् प्राप्यते सुखम्॥

अच्छे दान देने से भोग प्राप्त होते हैं यश-कीर्ति और सुख मिलता है। पद्मपुराण में भी कहा गया है—

सुपात्रदानाच्च भवेद् धनाढ्यो,
धनप्रभावेण करोति पुण्यम्॥
पुण्यप्रभावात् सुरलोक वासी,
पुनर्धनाढ्यः पुनरेव भोगी॥

सुपात्र-दान से मनुष्य धनाढ्य होता है। उस धनका सदुपयोग करके पुण्य उपार्जन करता है। पुण्य से देव गति मिलती है, वहाँ से वह मनुष्य-जन्म पाकर समृद्धि प्राप्त करता है और उसे भोगता है।

मनुस्मृति में भी निरन्तर दान देने की प्रेरणा देते हुए लिखा है—

दानेन भोगाः सुलभा भवन्ति,
दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
दानेन भूतानि वशी भवन्ति,
तस्माद्धि दानं सततं प्रदेयम्॥

दान से भोग-सामग्री सुलभ रूप से प्राप्त होती है, वैरका नाश होता है, सभी प्राणी वश में होते हैं। इसलिये निरन्तर दान देते रहो।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी सात्विक दान के सम्बन्ध में कहा है—

दातव्यमिति यद् दानं
दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्
दानं सात्विकं स्मृतम्॥

'देना चाहिये' इस विचार से देश-काल और पात्र का ध्यान रखते हुए प्रतिफल की कामना से रहित होकर जो कुछ दिया जाता है, उसे पण्डित लोग सात्विक दान कहते हैं। एक कवि ने इसे बहुत ही सुन्दर प्रकाश दिया है—

भिक्षुका नैव याचन्ते,
न दत्तं धनमर्थिनाम्।
सदृशं नैव जानामि,
प्रातः कस्य भविष्यति॥

भिक्षुक लोग जो घर घर घूमकर याचना कर रहे हैं, वे वास्तव में मनुष्यों को प्रति दिन यह बोध दे रहे हैं, कि यदि आपको समृद्धि की कामना है तो दान दीजिये, दान दीजिये। दान नहीं देने वाले की क्या स्थिति होती है—इसके उदाहरण रूप में हम आपके सामने उपस्थित हैं। जो दान नहीं देते हैं, उन्हें हमारे जैसे फल मिलने वाला है अर्थात् भीख माँगनी पड़ेगी। समुद्र जलका केवल संग्रह-ही-संग्रह करता है इसीलिये वह रसातल को प्राप्त हुआ है और बादल सबको पानी देते हैं इसलिये आकाश पर चढ़कर गर्जना कर रहे हैं। इस भाव को व्यक्त करने वाला एक पद्य 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' में मिलता है। यथा—

संग्रहैकपरः प्राप्तः समुद्रोऽपि
रसातलम्।
दाता तु जलदः पश्य
भुवनोपरि गर्जति॥

याचना करने वाले अर्थात् लेने वाले वास्तव में तिरस्कार या दुत्कारने योग्य नहीं, करुणा के पात्र हैं। एक तरह से वे दाता के लिये उपकारी हैं जो पुण्य का लाभ करवाते हैं। इसलिये एक विद्वान ने कहा है कि याचक के याचना करने पर दाता हर्षित होता है और

दान देकर मन में प्रसन्न होता है। ऐसे दाता को देखने और सुनने वाले अर्थात् उस दान का अनुमोदन करने वाले भी स्वर्ग प्राप्त करते हैं तो दाता को स्वर्ग मिले इसमें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वास्तव में दान का अनुमोदन करने वाले को भी दाता के समान ही फल मिलता है।

याचितो यः प्रहृष्येत,
दत्वा च प्रीतिमान भवेत्।
तं दृष्ट्वाप्यथवा श्रुत्वा,
नरः स्वर्गमवाप्नुयात्॥
फलं यच्छति दातृभ्यो
दाने नाचारित सत्यः।
फल तुल्य दातृदानानां
स्वानुमोदनम्।

'भक्ति-संहिता' में लिखा गया है कि दान के समान इस लोक-परलोक में कोई भी मित्र भावी हितकारक नहीं है—

नास्ति दानात् परं मित्रमिह
लोके परत्र च।

'धर्म—कल्पद्रुम' में दान का महत्व बतलाते हुए कहा गया है कि दान दुर्गति को निवारण करता है गुण के समूह को विस्तार करता है, कष्ट का निवारण करता है, तेज की संतति को धारण करता है, पाप के समूह को नाश करता है, संसार समुद्र से पार उतारता है। धर्म की उन्नति का कारण है और मोक्ष के सुख का भी कारण भूत है। इसलिये दान जगत में सदा विजयी रहे।

दान के पांच भूषण उपदेश। प्रासाद-ग्रन्थ में बतलाये है कि १—सत पात्र को दान देते समय आनन्द के आंसू बहावे। २—शरीर में रोमांच हो जाय। ३—मन में बहुमान की भावना हो। ४—प्रिय वचन बोले और ५—दान की अनुमोदना करे।

ये दान के पांच भूषण है। इसी तरह दान के पांच दूषण भी बतलाये हैं।

१—अनादर से दान दिया जाय, २—समय से न देकर विलम्ब से दिया जाय। ३—मुंह फेर या भौंह मोड़ कर दिया जाय। ४—कटुवचन बोले और ५—दान के बाद पश्चात्ताप करे। ये दान के पांच दूषण है।

दान देकर अभिमान करना, यश और कीर्तिकी कामना करना और प्रतिफल की आशा से देना, किसी के दबाव या लिहाज से दिना अपात्र को देना, दान देकर पछताना ये दान के फल को कम या नाश करने वाले हैं।

दान—धर्म के माहात्म्य के संबंध में अनेकों दृष्टान्त और कथाएँ विविध ग्रंथों में पायी जाती हैं। इस तरह दान धर्म का माहात्म्य भारतीय धर्मों में बहुत अधिक बतलाया गया है। इससे देने वाले के परिग्रह का त्याग होता है, चित्त प्रसन्न होता है और लेने वाले की आवश्यकताएँ पूरी होने से उसका जीवन सुखी बनता है।

सामूहिक रात्रि भोजन के विषय में समाज से प्रार्थना

जैन समाज अपने आचार विचार के लिये विश्व में प्रसिद्ध है लेकिन कुछ समय से समाज में आचार संबंधी शिथिलता आ गई है और विवाहादि अवसरों पर रात्रि भोजन की कुप्रथा चल पड़ी है जो आज के शास्त्र, स्वास्थ्य विज्ञान आदि सभी दृष्टियों से अहितकर है। अब तक इसके निवारण के लिये जो प्रयत्न हुए हैं उनका प्रभाव तो अवश्य पड़ा है पर इस विषय में सभी को पूर्ण ध्यान देने की आवश्यकता है। अतः जैन विद्वत्समिति देहली सभी जैन बन्धुओं पंचायतों एवं सभा सोसाइटियों से निवेदन करती है कि वे अपने यहां व्यक्तिगत या सामाजिक विवाहादि विशिष्ट अवसरों पर रात्रि भोजन की इस कुप्रथा को जड़मूल से मिटाकर जैन धर्म और संस्कृति की रक्षा करें। पूज्य त्यागी वर्ग एवं विद्वानों से प्रार्थना है कि वे इस विषय में अवसर उपदेश देने की कृपा करें।

—हीरालाल जैन, कौशल, मंत्री

प्रकाशक की आवश्यकता

जनगजट के प्रकाशन के लिये प्रकाशन कला में निपुण एक कर्तव्य परायण अनुभवी प्रकाशक की आवश्यकता है। जो सज्जन इस कार्य के करने में रुचि रखते हों वे अपनी योग्यता प्रमाणित करते हुए पत्र व्यवहार करें।

चौधरी सुमेरमल जैन
महामंत्री भा० दि० जैन महासभा
रंगमहल, अजमेर (राजस्थान)

पर्यूषण पर्व पर परिषद की नवीन भेंट

★ श्री जिनवाणी संग्रह ★

संपादक—पं० परमानन्द शास्त्री

मूल्य ४) लागतमात्र

चित्ताकर्षक छपाई एवं सुन्दर सजिल्द

प्रस्तुत ग्रन्थ आठ खण्डों में विभाजित है जिसमें नित्योपयोगी पूजा पाठ संस्कृत स्तोत्र, विनती आरती के साथ २ श्री जुगलकिशोर जी की देव, शास्त्र, गुरु श्री पुष्पेन्दु जी की पार्श्वनाथ पूजा, श्री जवाहरलाल जी कृत पंच परमेष्ठी पूजा, श्रुत स्कन्ध विधान, एवं श्री बनारसीदास, रूपचन्द दानतराय, भूधरदास आदि प्राचीन कवियों के आध्यात्मिक दोहे, अध्यात्मपद एवं सुभाषित सूक्त काव्य संग्रहीत है।

पुस्तक विक्रेता तथा थोक मंगाने वालों को २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायेगा।

पत्र व्यवहार का पता :—

विजेन्द्रकुमार जैन सर्राफ, मंत्री
अ० भा० दि० जैन परिषद पब्लिशिंग हाउस
२४० दरीबाकलां, दिल्ली।

A PEEP INTO JAINISM
By
B. Khub Chand Jain. New Delhi.
Revised by
B. Jai Bhagwan Advocate.
Price Rs. 2-50 n. P.

भगवान महावीर
लेखक—
डा० लागता प्रसाद D.L.,M.R.A.S.
भूमिका—
श्री दामुदेव शरण अग्रवाल
सुन्दर सजिल्द पृष्ठ सं० ३४०
मूल्य केवल ४) रु०

शुभ संवाद
"कुछ मोती"
इस लघु पुस्तिका में परिषद प्रकाशनों का संक्षिप्त विवरण एवं राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति व प्रधान मन्त्री जी के महावीर जयन्ति महोत्सव पर भाषण आदि हैं।

(165) जैन सन्देश आरा - 13 जनवरी - 2

दिल्ली और दिल्ली की राजावलि के सम्बन्ध में विशेष ज्ञातव्य।

नं० 165

[ले०—श्रीयुत अगरचन्द नाहटा]

जैनधर्म बहुत प्राचीन काल से भारत में है। वह यहीं जन्मा एवं भारतीय इतिहास के निर्माण में जब तक जैन ग्रन्थों का भली भाँति उपयोग वह पूर्ण हो ही नहीं सकता। पर जैनेतर विद्वानों का ध्यान अभी जैन पर कम ही गया है, फलतः बहुत-सी बातें अज्ञात एवं संदिग्ध अवस्था समाज का भी कर्त्तव्य है कि अपने सरस्वती मंदिरों—ज्ञानभंडारों में पड़ी है उसे शीघ्रातिशीघ्र खोज कर प्रकाश में लावे जिससे जैन विद्वानों एवं जैन रचना का वास्तविक महत्व विश्व में प्रकाशित हो।

जैन विद्वानों ने कोई भी विषय अछूता नहीं छोड़ा। सभी विषयों जैनग्रन्थ पाये जाते हैं, विशेषतः ऐतिहासिक साधनों की तो बहुत ही भ्र ग्रन्थों एवं फुटकर पत्रों में सुरक्षित है। भारतीय ग्राम नगरों के इतिह जैनग्रन्थ जितनी सहायता कर सकते हैं, दूसरे नहीं। कारण जैन मुनि ग्राम-ग्राम में घूमते रहे हैं, अतः उनकी ओघनी में (ऐतिहासिक काव्य, आदि, तीर्थ यात्री संघ के वर्णन में बने हुए ग्रन्थों के मार्ग में आते हु उल्लेख रहता है। प्रस्तुत लेख में भारत की प्राचीन एवं वर्तमान राजधा में प्रकाश डाला जा रहा है। प्रसंगवश वहाँ के तोमर शासकों की चर्चा कर दी गई है। अनेकान्त वर्ष ८ अंक २ में पं० परमानन्द जी श "दिल्ली का राजावलि" शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है। भारतीय इतिह नई समस्या उपस्थित होती है। साधारणतया सभी इतिहासकार तो वंश का अन्तिम दिल्लीपति मानते हैं। अनेकान्त में प्रकाशित वंशा पाँच नाम और पाये गये हैं।

"१६ रावल तेजपाल, १७ रावलु मदनपाल, १८ रावलु कृतपालु, और २० रावल पृथ्वीपालु" (सं० १५ दि० वंशावलि)

अनंगपाल के पश्चात् भी दिल्ली के कई शासक तोमरवंश के हुए हैं संग्रह की एक अन्य, तंवर वंशावलि, से भी होती है। उसमें अनंगपा माहणपाल (माहणपाल जो मदनपाल का अपभ्रंश पाठ है)। क

फला फूला, अ
नहीं किया जाया
ऐतिहासिक साध
में पड़ी हैं। ई
भी कुछ सामग्री
की अनमोल ऐ

है प्रचुर परिमाण
प्रधान सामग्री है
स के सम्बन्ध में
ऐसे विद्वानों हैं
भरित ग्रन्थ, पट्टाव
छोटे २ ग्रामों
दिल्ली के स
वंशावलि पर भी
ली का "दिल्ली
स में इसके द्वारा
र अनंगपाल के
लि में उसके पा

१९ रावल लखण

इसकी पुष्टि
ल के पश्चात् तेज
पाल (ऊपर दि

कृतपाल या लखणपाल होना संभव[1] है) पृथ्वीराज (पृथ्वीपाल ही संभव है) के नाम पाये जाते हैं। इनमें मदनपाल की अवस्थिति तो प्राचीन खरतरगच्छ गुर्वावली से भी हो जाती है। जिसके प्रथम अंश की रचना जिनपाल उपाध्याय ने सं० १३०५ में आषाढ़ सुदी १० को दिल्ली के सेठ साहुली के पुत्र हेमचन्द्र की अभ्यर्थना से की थी। इस अद्वितीय ऐतिहासिक ग्रन्थ[2] के अनुसार मदनपाल का समय संवत् १२२३ तक तो निश्चित होता है। इस संवत में यु० श्रीजिनदत्तसूरि के शिष्य श्री जिनचन्द्रसूरि दिल्ली के निकटवर्ती ग्राम में पधारे थे। उन्हें वन्दना करने को श्रावक समुदाय को जाते देख,—महाराजा मदनपाल के ये कहाँ जाते हैं? पूछने पर मन्त्रियों से यु० प्र० श्रीजिनचन्द्रसूरि का आगमन ज्ञात हुआ। तब राजा मदनपाल भी समस्त राज्याधिकारियों के साथ सैनिक समारोह सहित सूरि जी के पास गया। उनके धर्मोपदेश को श्रवण कर महाराजा अत्यन्त प्रमुदित हुआ और उनको अपने नगर दिल्ली में पधारने की आग्रह पूर्वक विनती की। उनका प्रवेशोत्सव बड़े समारोह से हुआ। महाराज मदनपाल स्वयं सूरि जी से हाथ मिलाये हुए पेशवाई में चल रहा था। नृपति के अनुरोध से सूरिजी ने चातुर्मास वहीं किया। पर दुर्भाग्यवश भादवाकृष्ण १४ को वहीं उनका स्वर्गवास हो गया। आप का स्तूप आजभी कुतब के पास विद्यमान है। जिनकी सैकड़ों वर्षों से अनेक भक्त उपासना करते आ रहे हैं।[3]

अभी हमें भारतीय मुद्राशास्त्र सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण जैनग्रन्थ उपलब्ध हुआ है, उसके अनुसार मदनपाल का सिक्का भी प्रचलित हुआ था। अतः मदनपाल की अवस्थिति पूर्णरूप से निश्चित होती है। पिछली पट्टावलियों के अनुसार सूरि जी के वियोग के अनुताप से महाराज मदनपाल का स्वर्गवास भी सं० १२२३ में हो गया प्रतीत होता है। ऐतिहासिक विद्वानों का कर्तव्य है कि वे वंशावलियों के पांच नामों के सम्बन्ध में स्वतन्त्र रूप से अन्वेषण कर के भारतीय इतिहास की इस समस्या को सुलझाने का पूर्ण प्रयत्न करें।[4]

---

१ संभव है इन दोनों में से एक ने थोड़े ही समय राज्य किया हो इस कारण उनका नाम इसमें नहीं दिया हो।

२ देखें मेरा लेख "खरतरगच्छ गुर्वावली का ऐतिहासिक महत्व" भा० भारतीय विद्या व० १ अ० ७

३ विशेष जानने के लिये लेखक की "मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि" पुस्तक देखनी चाहिये।

४ "अनंगपाल से विग्रहराज ने दिल्ली ले ली" इस समस्या पर विचार करने पर मुझे तो इसका उचित समाधान यही प्रतीत होता है कि अनंगपाल से दिल्ली से इसका कोई प्रमाण मेरे अवलोकन में नहीं आया और ओझाजी ने विग्रहराज ने सं० १२०७ में तोमरों से दिल्ली ली, लिखा है। यहाँ अनंगपाल का नाम नहीं है एवं संवत भी अनुमानिक है। मेरे अवलोकन में बिजोला के सं० १२२६ के लेख में विग्रहराज के दिल्ली राज्य का उल्लेख आया है अतः सं० १२२६ से पूर्व उसने दिल्ली ली यह तो निश्चित है। वंशावलि में सं १२१६ से चौहान राज्य का उल्लेख है संभव है यह बहुत कुछ ठीक हो। पर मेरे नम्र मतानुसार दिल्ली पर चौहानों का अधिकार

अब मैं पं० परमानंद जी के लेखगत अन्य बातों पर नवीन ज्ञातव्य उपस्थित करता हूँ। आशा है, इससे कुछ नई जानकारी प्रकाश में आयगी।

१ दिल्ली की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मुझे प्राप्त हिन्दी भाषा की पद्यबद्ध दिल्ली राजावलि (कवि किसनदास एवं कल्हण रचित) में इस प्रकार का उल्लेख पाया जाता है—

"नृप अनंगपाल बतीसवाँ, बतीस लक्षण तास।
संवत् जहां नौसइ निड्डोतर, (९०९) वर्ष मित सुप्रकास ॥४१॥
गुरुवार दशमी दिवस उत्तम तह असाढ़े मास।
दिल्ली नगर करि अगड़ (पाठा० गढ़ो), कीनी, कहै कवि किसनदास।
सो गढ़ के जब किल्ली छ(३)येड़ी, इतपति गढ़ तहवेर।
सात (पा० सोव) हुइ किल्ली वहां गाड़ी, भई दिल्लीफेर ॥४२॥

२ जैन साहित्य में दिल्ली के कतिपय उल्लेख इस प्रकार हैं :—

१ दिल्ली बादली में वर्द्धमानसूरि जी (१०४० के लगभग) ने आकर उद्योतनसूरि जी से दीक्षित हुए। (दे० गणधर सार्द्ध शतक वृत्ति)

२ सं० १०८८ में विमलविसही के निर्माता विमलशाह को दिल्लीपति ने छत्र भेजा। यहाँ दिल्लीपति का नाम नहीं है। (दे० जै० सा० सं० इति पृ० २१०)

३ सं० १३२० के लगभग मांडवगढ़ के महामंत्री पेथड़कुमार के पुत्र झांझण को दिल्ली के श्रेष्ठी भीम ने अपनी पुत्री परणाई। (वही पृ० ४०४)

४ पेथड़ शाह जब गिरनार की यात्रा को पधारे तब वहां दिल्ली निवासी अगरवाल पूर्ण नामक दि० श्रावक संघसह आया हुआ था।

५ श्री जिनप्रभसूरि जी ने दिल्ली सम्राट् कुतुबुद्दीन महम्मद को प्रतिबोध दिया व जिसका विशेष वर्णन हमारे "ऐ० जै० काव्य संग्रह" और "शासन प्रभावक श्री जिनप्रभसूरि निबन्ध में देखना चाहिये।[1]

६ सं० १३७१ के लगभग संघपति समराशाह दिल्ली के बादशाह कुतुबुद्दीन से सम्मानित हुआ था। उसके पुत्र सुलतान गयासुद्दीन से पांडुदेश के राजा वीरवल्ल को समरा ने छुड़ाया व शाही फरमान प्राप्त कर मथुरा एवं हस्तिनापुर की यात्रा संघ सहित जिनप्रभसूरि के साथ की। (देखें नाभिनन्दनोद्धार प्रबन्ध)

खरतरगच्छ गुर्व्वावली में दिल्ली सम्बन्धी और भी अनेक उल्लेख हैं। पर वह अभी पास न होने से श्रीजिनकुशलसूरि ग्रन्थ से ही थोड़े से उल्लेख नीचे दिये जाते हैं :—

होने पर भी उनकी आज्ञाधिकारी शासक तोमर ही रहे थे। अतः अनंगपाल के बाद के २ राजा जिनका नाम वंशावलि में पाया जाता है अवश्य ही दिल्ली के शासक रहे हैं।

१ विधिप्रपा में प्रकाशित।

७ सं० १३७५ माघ सुदी १२ को फलौधी के विराट महोत्सव के प्रसंग पर दिल्ली के मन्त्रीदलीय ठक्कुर विजयसिंह ठ० सेढू शाह रुद्रा आदि सम्मिलित हुए थे।

८ श्री जिनप्रभसूरि ने दिल्ली के संघपति देवराज देल्हिग की तीर्थ-संघ यात्रा का निम्नोक्त वर्णन किया है :—

"महिमंडलि हुय संघवइ घणा दिवराय सरिस नहु जत्तुजणा।
जिणि डिल्लिय नगरिहि मज्झि सयं देवालउ कारिउजत्तकयं ॥३॥
फालिहमणि ससिहर कर विमलं, जसकलसु चडाविय उ जेणकुलं।
नगगण जण तोसिय धणवरिसं, अवयरिउकंत्तु दिवराय मिसं ॥४॥

दिवराज ने संघसह शत्रुंजय की यात्रा सं० १३०६ जेठ सुदी ८ को की थी जिसका निर्देश सूरि जी के अन्य स्तोत्र में पाया जाता है।

९ सं० १३७६ में उपर्युक्त विजयसिंह ने सम्राट् कुतुबुद्दीन से तीर्थयात्रा का फरमान प्राप्त कर हस्तिनागपुर एवं मथुरा की यात्रा की एवं श्री जिनचन्द्रसूरि जी के साथ संघ दिल्ली में लौटा। सूरिजी ने सम्राट् कुतुबुद्दीन को अपनी प्रतिभा से चमत्कृत कर खंडासराय में चौमासा किया।

१० सं० १३७७ में जिनकुशलसूरिजी के पदोत्सव के समय उपर्युक्त ठ० विजयसिंह, श्रीजिनचन्द्रसूरि के प्रदत्त शिक्षा पत्रादि को लेकर पाटण पधारे।

११ सं० १३८० में दिल्ली के श्रीमाल ज्ञातीय सेठ हरू के पुत्र सुश्रावक रयपति ने अपने पुत्र धर्मसिंह द्वारा (जिसे सम्राट् गयासुद्दीन से प्रतिष्ठा प्राप्त थी) मन्त्री नेब साहब सहायता से निर्बाध तीर्थयात्रा के लिये शाही फरमान प्राप्त किया। और अपने पुत्र हरणसिंह, धर्मसिंह, शिवराज, अभयचन्द्र, व पौत्र, भीम, भ्रातृ, जवणपाल आदि के साथ व स्थानीय मन्त्रीदलीय साधु जवणपाल, श्रीमाल मोजा, सा० श्रीतम, फेरू आदि के साथ संघ सह वैसाख वदी ७ को प्रस्थान कर शत्रुंजय एवं गिरनार की यात्रा करते हुए का० व० ४ को दिल्ली पहुँचे। सेठजी के पुत्र धर्मसिंह ने शाही फरमान प्राप्त कर प्रवेशोत्सव किया।

१२ सं० १३८१ में भीमपल्ली से शत्रुंजयादि का यात्री-संघ निकला। उसमें भी दिल्ली के मन्त्रीदलीय ठ० जवनपाल सा० लखमण एवं श्रीमाल रुद्रपाल सा० नीमदेव सम्मिलित हुए थे।

१३ सं० १३८१ में पाटण के विराट प्रतिष्ठा महोत्सव के प्रसंग पर योगिनीपुर के श्रीमाल रुद्रपाल व निम्बा पधारे थे।

१४ सं० १४१५ में जिनोदयसूरि जी का महोत्सव दिल्ली के श्रीमाल सा० रतना

पुना आदि ने किया था।

१५ सं० १६७५ के लगभग कविवर बनारसीदास जी भी यहाँ पधारे थे।

१६ सं० १८८०।९० के लगभग शिव (जिन) चन्द्रसूरिजी ने यहीं चौमासा किया था। (दि० ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह)

३—दिल्ली के जैन मन्दिर :—

पं० परमानन्दजी ने आधुनिक दि० जैन मन्दिरों का उल्लेख किया है और भाई पन्नालालजी जैन ने अनेकान्त के इसी वर्ष के ६-७ वें अङ्क में दिल्ली के सभी वर्तमान मन्दिरों व संस्थाओं की सूची दी है। जिनमें सब से पुराना उर्दू मंदिर है, पर उससे प्राचीन मंदिर भी थे। अतः दिल्ली निवासी सज्जनों को वहां के श्वेताम्बर दिगम्बर सभी मन्दिरों की मूर्त्तियों के लेख प्रकाश में लाने चाहिये व यथा ज्ञात जानकारी करनी चाहिये। मैं तो यहां पर प्राचीन श्वेताम्बर मन्दिरों का परिचय ही देता हूं। जिनका उल्लेख प्राचीन साहित्य में उपलब्ध होता है

१ सं० १२२१ में मणिधारी जिनचन्द्रसूरिजी यहाँ पधारे तब यहाँ पार्श्वनाथ विधि चैत्य था। उसके दक्षिण स्तम्भ में अतिबल अधिष्ठायक की स्थापना सूरि जी ने की थी।

२ विधितीर्थकल्प से स्पष्ट है कि जिनप्रभसूरिजी ने नौंय महावीर प्रतिमा को शाही खजाने से सम्राट् मुहम्मद शाह से प्राप्त कर उसकी स्थापना मलिक ताजदीन सराय के जिनमन्दिर में की थी। उनके शिष्य जिनदेवसूरिजी ने अपनी अद्भुत प्रतिभा से चमत्कृत कर एक मोहल्ला जैनों के लिये प्राप्त किया उसका नाम "सुलतान सराय" रखा गया। जिसमें जैन-मन्दिर औषधशाला भी बनायी गई थी। उपर्युक्त महावीर बिम्ब इस मन्दिर में विराजमान किया गया। यह प्रतिमा बड़ी चमत्कारी थी। श्वेताम्बर दिगम्बर एवं अन्य धर्मावलम्बी भी इसकी पूजा व भक्ति किया करते थे।

उपर्युक्त सराय राजसभा से दूर थी। अतः सूरिजी के आने जाने के कष्ट का अनुभव कर सम्राट के महल के निकट सुन्दर भवनों वाली एक नवीन सराय समर्पित की। श्रावक-संघ को वहाँ रहने की आज्ञा दे, बादशाह ने उसका नाम "महारक सराय" प्रसिद्ध किया। यहाँ वीरप्रभु का मन्दिर व औषधशाला भी बनवाई। सं० १३८९ के मिती आषाढ़ कृष्ण सप्तमी को उत्सव पूर्वक सूरिजी ने औषधशाला में प्रवेश किया।

हस्तिनापुर की यात्रा का वैशाख सुदी १० के दिन श्रीकन्यानयन के महावीर बिम्ब को सम्राट के बनवाये हुए जैन-मन्दिर में महोत्सव पूर्वक स्थापित किया।

३ पन्द्रहवीं शताब्दी की खरतरगच्छीय तीर्थमाला में दिल्ली के ४ मन्दिरों का उल्लेख इस प्रकार है :—

"आसियनयर निवासिप्पास पणमऊ परमेसर । कन्नाणयसिरिवीरनाहमव तिमिर दिणेसर ।
सन्तीवीरसिरिपास नेमि ढीलीजिनचन्दा । हथिणाउरसिरि संति कुंथुअरमल्लि जिणिन्दो ।"
अर्थात - दिल्ली में इस समय शांति, वीर, पार्श्व एवं नेमिनाथ के मन्दिर थे ।

४ सं० १४१० के लगभग विनयप्रभमहोपाध्याय रचित तीर्थयात्रा स्तवन में भी महावीर प्रभु के मन्दिरों के स्मरण में योगिनीपुर में वीर भगवान का स्मरण-उल्लेख किया है ।

सं० १७४६ में शीलविजय रचित तीर्थमाला में यहाँ के महावीर मन्दिर का उल्लेख है । "दिल्ली मंडण वीर जिणंद"

४ दिल्ली में रचित साहित्य :—

दिगम्बर विद्वानों ने तो यहाँ बहुत से ग्रन्थ बनाये होंगे । यहाँ केवल श्वेताम्बर रचनाओं का ही निर्देश करता हूँ ।

१ सं १३५२ में जिनप्रभसूरि जी ने कायस्थ खेतल की अभ्यर्थना से कातंत्र विभ्रम टीका बनाई ।

२ सं० १३७२ में अलाउद्दीन के राज्य में श्रीमाल धांधिया ठ० फेरू ने रत्नपरीक्षा ग्रन्थ बनाया । ठ० फेरू संभवतः उक्त सम्राट् के कोषाध्यक्ष थे ।

३ सं० १३८५ में भाद्रशुक्लादशमी को जिनप्रभसूरि ने विविधतीर्थकल्प यहाँ पूर्ण किया ।

४ सं० १६२४ के विजयदशमी को साधुकीर्त्ति जी ने आपादभूति प्रबन्ध बनाया । इसकी रचना वहाँ के पाषड़गोत्रीय श्रीमाल शाह तेजपाल के लिये हुई थी ।

५ सं० १६९९ माघ सुदी १० को दयासागर ने चित्रलेखा चौपई की रचना की ।

५ दिल्ली में लिखित प्रतियाँ :—

१ जैन पुस्तक 'प्रशस्ति-संग्रह' के पृ० १४१ में दिल्ली के धनाढ्य एवं राजमान्य ठ० दूदा कुरा पद्मसिंह ने अपने पिता राजदे के कल्याण के लिये सं० १४५२ में ३ ताड़पत्र पर १ कागज पर पुस्तकें लिखवाने का उल्लेख है ।

२ हमारे संग्रह में एक महत्त्वपूर्ण संग्रह प्रति है जो सं० १४९३ में योगिनीपुर में लिखी गई है । उसकी पुष्पिका इस प्रकार है ।

"सं० १४९३ वर्षे वैशाखमासे प्रथमपक्षे ८ दिने सोमे श्री बृहद्खरतरगच्छे श्रीजिनभद्रसूरिगुरौ विजयमाने श्रीकीर्तिरत्नसूरिणां शिष्येण शिवकुंजर मुनिना निजपुण्यार्थं स्वाध्याय पुस्तिका लिखिता । चिरं नंदतात् । श्रीयोगिनीपुरे । श्री ।

दिल्ली में लिखित और भी अनेक प्रतियाँ प्राप्त हैं लेख विस्तारभय से यहाँ उनकी चर्चा नहीं की गई ।

(166) मधुमती — मार्च १९८०

दलपतिराय कृत ग्वालेरी भाषा व्याकरण

नं - 166

–श्री अगरचन्द नाहटा

राष्ट्र भाषा के रूप में जो हिन्दी को गौरव मिला है, वह अकस्मात और अविचारित नहीं है, उस की पृष्ठभूमि अपने बहुत लम्बा समय और मंथन चिन्तन लगा है। शताब्दियों से इस भाषा का विकास सब प्रान्तों में होता रहा है। इसीलिए इसके भाषा-भाषी सबसे अधिक हैं। सन्तों और कवियों ने इसके प्रचार में जीवन लगाया है, बहुत बड़ी तपस्या की है। संत सर्वत्र भ्रमणशील होते हैं और जनजीवन पर उनका बहुत बड़ा प्रभाव भी रहता है क्योंकि भारत धर्म और आध्यात्म प्रधान देश रहा है इसलिए सन्तों का प्रभाव जनजीवन पर अधिक रहना स्वाभाविक ही है क्योंकि सन्त भक्त एवं महात्मा धर्म साधना के सूत्र रूप हैं और प्रचारक भी। तुलसीदास, सूरदास, कबीर, मीरा, आदि सन्तों के वचन एवं भजन सर्वत्र प्रचारित हैं तथा जनजीवन को भी बहुत प्रभावित करते रहे हैं। इसी तरह बहुत से कवियों, लेखकों ने भी जीवनोपयोगी अनेक विषय के ग्रन्थ बनाये और उनका जनजीवन में बहुत बड़ा उपयोग होने से भी हिन्दी के सार्वत्रिक प्रचार को बल मिला। राज-दरबारों में भी इन कवियों और लेखकों को प्रश्रय व सम्मान मिला, इसलिए हिन्दी में साहित्य निर्माण भी संस्कृत को छोड़कर अन्य सभी भाषाओं से अधिक हुआ है।

हिन्दी के अनेक रूप हैं। खड़ी बोली को तो मुसलमानों ने अधिक प्रश्रय दिया। जनजीवन को अधिक प्रभावित किया ब्रज, अवधी तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं ने। ब्रज भाषा का नाम तो ब्रज प्रदेश से पड़ा है। पर उसका प्रभाव और प्रचार निकट के ही नहीं दूर-दूर के प्रान्तों पर भी पड़ा है। ब्रज भाषा का एक दूसरा और समकक्ष नाम ग्वालेरी भी रहा है क्योंकि ग्वालियर के राजा और जनता ने इस भाषा के विकास में बहुत बड़ा योग दिया है। प्राचीन अनेक कवियों और लेखकों ने अपनी रचनाओं की भाषा का नाम ग्वालेरी दिया है। यह मैंने अपने कई लेखों में तथा श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ने स्वतन्त्र ग्रन्थ में स्पष्ट किया है। द्विवेदी जी की 'भारती' पत्रिका अब तक प्रकाशित होती रहती तो इसकी पुष्टि और हो जाती। पर खेद है वह कुछ समय ही चलकर बन्द हो गई।

किसी भाषा का व्याकरण ही उसका मूल आधार है। उसके व्याकरण से ही अन्य भाषाओं से उसका अलगाव व विशेषता प्रगट होती है। कुछ वर्ष पूर्व जोधपुर जाने पर राजस्थान-प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान के एक हस्तलिखित गुटके में दलपतिराय की सभी रचनायें देखने को मिलीं। जिनमें ग्वालेरी भाषा व्याकरण भी एक है। दलपतिराय 18 वीं शताब्दी में जयपुर में हुये हैं। उनकी एक महत्वपूर्ण रचना राजनीति-निरूपण-शास्त्र मैंने अपने सम्पादित शृंगार-ग्रन्थ के परिशिष्ट में दी थी। उनकी अन्य

रचनाओं के सम्बन्ध में भी मेरा "श्रमणोपासक" में लेख छप चुका है। 18 वीं शताब्दी के रचित 'ग्वालेरी भाषा व्याकरण' ग्वालियर और मध्यप्रदेश के लिये एक गौरवशाली रचना मुझे लगी। अतः उसकी नकल यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

अथ ग्वालेरी भाषा व्याकरणं लिष्यते ॥[1]

देय नाम भाषा कहूँ कहूँ जावनी होइ
भाषा नाना देस की ग्वोलेरी मधि जोइ ॥१॥

॥ संस्कृत यथा ॥ चंदन ॥ रोचन ॥ कंचन ॥
प्राकृत यथा ॥ अक्क ॥ चक्क ॥ सक्क ॥
जावनी यथा ॥ गुलाब ॥ चसमा ॥ किबलनुमा ॥
देसी यथा ॥ नीकै ॥ भलै ॥

॥ दोहा ॥

कृचुटु वरग के पांच ए। ख ग प लु बिसरग टारि
व्यंजन अट्ठाईस दस स्वर संजोग अनुसार ॥२॥

ङ ञ ण ग श ष लु ॥ ए आठ वर्ण ग्वालेरी भाषा
मैं नहीं। केई देह मात्रा हू निपात है ॥
येय मात्रा यथा ॥ कैति ॥ कोक
दोइ मात्रा यथा ॥ छैया ॥ सैया ॥ सौरभ अत।
देह मात्रा यथा नैन ॥ और।

अनुस्वार नों छंदोभंग की शंका नों सानुनासिक पढ़ें ॥ तावी निसानी अर्द्ध चन्द्र यथा ॥ आनंद। आनंद।

आधिक्य कहूं वर्णादिक की अधिकाई होइ। स्तुति ॥ अस्तुति। मोहन। मोंहन।

॥ ह्रास ॥ कहूं वर्णादिक को लोप होइ। अक। क। अब। ब।

संकोच ॥ विकार ॥ ह्रस्व कों दीर्घ दीर्घ कों ह्रस्व होई ॥ गंगा ॥ गंग ॥ रंग ॥ रंगाहरी। महि। मही ॥ जंबू दीप। जंबु दीप। गुरु गुरू ॥

1. प्रति-नाम हिन्दुस्तान की पातसाही का प्रमाण। प्रति राजस्थान-प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान जोधपुर में संग्रहीत। प्रति सं. 17727 पत्रा 27-28 पर लिखित पाठ अविकल उद्धृत। (इस 'ग्वालेरी भाषा के व्याकरण' का मूल पत्र नकल में प्राप्त हुआ था, जो मैंने सत्र की प्रस्तावना में प्रकाशित किया था। सं.)

व्यत्यय ॥ कोई स्वर कों कोई स्वर होई ॥ तनू । तन । नह तुह ॥ पृथिवी ॥ पुहमी । द्वि दो । एक । इक

व्यावृत्ति ॥ संस्कृत । प्राकृत में अकार ते अनंतर यकार वकार होइ । ताकों क्रम तें अै ओ होइ ॥ नयन । नैन ॥ मयण ॥ मैन । पयन । पौन ॥

अधर ॥ ओर ॥ सवर्ण तुहरे में एक को लोप ॥
आदि स्वर को दीर्घ । धम्म ॥ धाम ॥ कट्ठ । काठ ॥ रत्ति राति ॥ सप्प । सांप ॥
छिक्क ॥ छींक ॥ दिट्ठ । दीठि । उच्च ऊंच ॥

॥ आदेश ॥

कोई स्वर आ व्यंजन कों व्यंजन आदेश होइ ॥ वृथा । व्रथा । कृपा ॥ क्रपा ॥ खर्व । नख ॥ नख ॥ गुख । मुपडर ॥ निगड । निगर । घोड़ा घोरा । वर्भ । कण । कन । णनं वेष । भेस ।

॥ मवं ॥
अकार मों अनंतर मकार कों वकार होइ ॥
पहलें कों सानुनासिक ॥ रमण । रंवन ॥ गमन ॥ गंवन ॥

॥ इव ह्यायस्य । पाय । पाइ ॥ उपाय ॥ उपाव ॥ परवाय परवाह ॥
॥ लरं ॥
आलस्य ॥ आरस ॥
॥ वचं ॥ वचन ॥ बचन ॥ वदत । क्वचिन्मध्ये । पीवन । जीवन ॥
॥ छपी क्षस्य ॥ क्षीण । छीन । पीन ।
मः पस्य वा ॥ विसेप । विसेस ।
॥ अन्यथा ॥ सुथाह । उमाह
॥ अइस्त्री ॥ स्त्रीलिंग वाची अकारांत को इकारांत होई ।

चतुर पुरुष ॥ चतुरिस्त्री । नागर पुरुष ॥ नागरिस्त्री ॥ उच्चयाया भैवयै पुंसः ऋया त्रिवं एक वचन छलें । अकार कों उकार होइ ॥ करतु है ॥ धरतु है ॥

॥ इयंतः सानुनासिक स्त्रियां बहुत्वे ॥ गईं । आईं ॥
सो द्वितीय दिपु बहुत्वे ॥ देवन । देवान ॥
॥ तिस्तृतीया यां ॥ देवनें ॥ देव करि ॥ देवेन ॥
तें सीं पंचम्यां ॥ देवतें ॥ देव सों । देवात् ॥
कोपष्ठ्यां ॥ देवको । देवन्वसी नष्ठमर्थे । देव में । देव ॥

(167) जैन जगत् जु० १९६८

दिल्ली जैन डायरेक्टरी– एक महत्वपूर्ण प्रकाशन

अगरचन्द नाहटा No. 167

जैन समाज भारत के कोने कोने में बसा है, अनेक स्थानों में बिखरे होने के कारण एक दूसरे की जानकारी प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई होती है। विशेषतः बड़े बड़े शहरों में, क्योंकि नगरों में काफी बड़े परिमाण में जैन परिवार रहते हैं और वहाँ पारस्परिक संपर्क भी इतना कम होता है कि एक ही मकान में रहनेवाले व्यक्तियों में भी पूरी जान-पहचान नहीं होती। सभी लोग अपने अपने कामों में व्यस्त और मस्त रहते हैं। जिन बड़े नगरों में बहुत से मंदिर, स्थानक आदि धर्मस्थान और शिक्षणालयादि संस्थाएं होती हैं, उनकी पूरी जानकारी भी प्राप्त करना बड़ा कठिन कार्य है। इसलिये ऐसे स्थानों की डायरेक्टरी प्रकाशित की जाना तो बहुत ही आवश्यक हो जाता है। वैसे ही भारत के कई स्थानों की जैन डायरेक्टरियाँ प्रकाशित हुई हैं, एवं जाति तथा संप्रदायसंबंधी डायरेक्टरियां भी निकली हैं। पर अबतक की प्रकाशित समस्त डायरेक्टरियों में 'दिल्ली जैन डायरेक्टरी' का विशिष्ट स्थान है। यह अनेक दृष्टियों से उपयोगी और आकर्षक है, साथ ही सस्ती भी। वास्तव में बड़े नगरों में अनेक व्यवसायी होते हैं अतः विज्ञापन अधिक परिमाण में जुटाये जा सकते हैं और उनके द्वारा किसी भी ग्रंथ या अंक के प्रकाशन का अधिकांश खर्च निकल आता है। प्रस्तुत डायरेक्टरी में भी ९० विज्ञापन प्रकाशित किए गए हैं और उसी कारण लागत के एक-तिहाई दामों में देना संभव हो सका है।

इस डायरेक्टरी का प्रकाशन 'जैन सभा' नई दिल्ली की तरफ से हुआ है। इसके संपादक मंडल में सर्व श्री डिप्टीमल जैन, अनिंद्रकुमार जैन, आदिश्वरप्रसाद जैन, उग्रसेन दिगंबर, शिवदयालसिंह; सतीशकुमार जैन, टेकचंद जैन और चक्रेशकुमार जैन इन ८ व्यक्तियों के नाम हैं। भूमिका में श्री चक्रेशकुमार (मंत्री, जैन सभा) ने इस डायरेक्टरी निर्माण की पृष्ठभूमि एवं गतिविधि की चर्चा की है। उससे मालूम होता है कि जैन सभा, नई दिल्ली सन १९५१ से १९५५ तक में कई जैन डायरेक्टरियां प्रकाशित कर चुकी हैं लेकिन उनका क्षेत्र नई दिल्ली तक ही सीमित था। जबकि प्रस्तुत डायरेक्टरी में समूची दिल्ली के जैनों संबंधी उपयोगी जानकारी का संकलन किया गया है। श्री. गोकुल प्रसादजी ने सुझाव दिया कि "दिल्ली में आज जैनों की संख्या ३०–३५ हजार के लगभग है। यदि सभा इस प्रकार की एक डायरेक्टरी का, जिसमें कि समूचे दिल्ली प्रदेश के जैनों के बारे में जानकारी प्राप्त हो सके, संकलन और प्रकाशन करे तो वह न केवल स्थानीय जैन व जैनेतर समाज को, वरन् बाहर से आनेवालों के लिये भी उपयोगी हो सकेगी।" इस महत्त्वपूर्ण सुझाव का स्वागत करते हुये डायरेक्टरी की रूपरेखा काफी चर्चा के बाद बनायी गई और समय समय पर अनेक बैठकें होती रही। अनेकों व्यक्ति और संस्थाओं को जानकारी देने के लिये पत्र भेजे गये थे और व्यक्तिगत रूप से भी काफी प्रयत्न किया गया तभी ऐसी उपयोगी डायरेक्टरी प्रकाशित होना सम्भव हो सका है। कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद, जयपुर, आदि के जैन समाज के लिये यह प्रयत्न बहुत ही अनुकरणीय है। सबसे महत्त्व की बात तो यह है कि

...ुत सीमित और

...कि इन्दौर की डायरेक्टरी का

...देते हुये मैंने लिखा था कि इसमें केवल दिगम्बर जैनों संबंधी जानकारी ही दी गई है; अच्छा होता श्वेताम्बर जैनों संबंधी जानकारी भी प्रयत्न पूर्वक संग्रह करके इसमें दे दी जाती। "प्रस्तुत दिल्ली जैन डायरेक्टरी में श्वेताम्बर, दिगम्बर दोनों के मन्दिर, स्थानक, संस्थाओं, विद्वानों, पत्र-पत्रिकाओं, व्यापारियों, एवं अधिकारियों का समानभाव से विवरण दिया गया है।

डायरेक्टरी के प्रारम्भ में दिल्ली के अतीत जैन इतिहास पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। फिर जैन मंदिर व स्थानक, मंदिरों व स्थानकों के व्यवस्थापक, धर्मशालायें एवं शिक्षण संस्थायें, पुस्तकालय, औषधालय, धार्मिक व पारमार्थिक संस्थायें सामाजिक और साहित्यिक संस्थायें; जैन पत्र एवं पत्रिकाओं का विवरण देकर भारतीय संसद व केन्द्रिय सरकार, दूतावास, दिल्ली प्रशासन, आदि के जैनों की नामावली पते सहित दी गई है। तदनन्तर बैंक व बीमा कम्पनियां, समाचार पत्र व निजी व्यापारिक संस्थान, उद्योग व व्यापार, व्यवसाय, वैज्ञानिक, साहित्यकार व विद्वान, सार्वजनिक क्षेत्रों में जैन पदाधिकारी इस तरह दिल्ली की जैनों संबंधी आवश्यक जानकारी देने के बाद दिल्ली के १०१ दर्शनीय स्थान और २०१ भारत के प्रमुख जैन-तीर्थों का जो विवरण दिया गया है वह बहुत ही उपयोगी है। अंत में जैन सभा, नई दिल्ली के सदस्यों की सूची पत्तों सहित दी गई है जिससे सभा के अनेक योग्य व्यक्तियों की नामावली ज्ञात हो जाती है। प्रारम्भ में बाहुबली और भगवान महावीर का चित्र और फिर यथा स्थान जैन मंदिरों, मूर्तियों के चित्र दिये गये हैं। यह २६८ पृष्ठों (२०×३० अठपेजी साईज) का सजिल्द ग्रन्थ वास्तव में ही बड़े महत्व का है। बहुत प्रयत्न करने पर भी जो जानकारी इस संस्करण में नहीं दी जा सकी उसे अगले संस्करण में देने की योजना है। आशा है, इस ग्रन्थ को मंगाकर जैन समाज लाभ उठायेगा।'

पता : जैन सभा, जैन निशी मंदिर, लेडी हार्डिंग रोड, नई दिल्ली १.

दिल्ली भारत की प्राचीन राजधानी है। गत १००० वर्षों से जैन समाज का भी यहाँ काफी प्रभाव रहा है। अतः यहां का जैन इतिहास विशेष महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत डायरेक्टरी में तो उस इतिहास की कुछ-झाँकी ही देनी सम्भव थी, पर आवश्यकता है कि इस संबंध में स्वतन्त्र खोज की जाय और एक ग्रन्थ प्रकाशित हो। दिल्ली में दि. शास्त्र भण्डारों में भी बड़ी महत्व की सामग्री है। उनकी कुछ सूची पहले अनेकान्त में निकली थी। अब श्री कुन्दनलाल जैन उन शास्त्र भण्डारों की विवरणात्मक सूची बना रहे हैं जिसके प्रकाशित होने पर इन भण्डारों का महत्व और भी अधिक प्रकाश में आवेगा। स्थानकवासी कान्फ्रेंस ने भी हस्तलिखित प्रतियों के संग्रह एवं सूची का काम शुरू किया, जानने में आया है। पर उसकी समुचित जानकारी प्राप्त नहीं कर सका। जैन म्यूजियम भी स्थापित किया गया है। और उसकी बहुत ही आवश्यकता भी है पर प्रगति धीमी दिखाई दी। मेरी राय में इस संग्रहालय को बहुत ही समृद्ध एवं कल्याणपूर्ण बनाया जाय और इसका समुचित प्रचार किया जाय जिससे अन्य लोगों का ध्यान भी जैन पुरातत्व और कला की ओर आकृष्ट होगा। मुनि सुशील कुमारजी ने अहिंसा विश्वविद्यालय की योजना भी क्रियान्वित की है। पर दिल्ली में मांसाहार का प्रचलन बढ़ता जा रहा है वह कम करना अत्यावश्यक है।

卐

'जैन जगत' में विज्ञापन देना लाभप्रद है। आजही लिखिए—
'जैन जगत'
५०५ कालभा देवी, मुंबई—२

दृढ़ संकल्प की महान शक्ति ::

—श्री अगरचन्द नाहटा

मन और बुद्धि वाला प्रत्येक व्यक्ति हर समय कुछ न कुछ विचार और तर्क-वितर्क करता ही रहता है। मन का कार्य ही विचार करते रहना है। न मालूम कितनी विचार लहरें, अब तक उठीं और उठेंगी, कितने अच्छे और बुरे विचार मनमें आये और विलीन हो गये, कुछ विचार ऐसे भी होते हैं जो जीवन में स्थायी प्रभाव डालते हैं और वे विचार केवल मन की क्रिया तक ही सीमित नहीं रहते पर वचन और शरीर के द्वारा भी क्रियान्वित होते हैं। ऐसे विचार, जिनके पीछे शुभ या शिवकार्य करने का विचार हो, संकल्प कहलाते हैं। हम जितने भी शुभ या अशुभ कार्य करते हैं या तो वे प्रकृति और अभ्यास के कारण होते हैं या विचार एवं संकल्प के कारण। अभ्यासवश जो कार्य होते हैं उनमें यद्यपि तत्कालीन विचार का इतना प्रभाव नहीं दिखाई देता पर उसके पीछे भी पूर्ववर्ती विचारों और तदनुसार किये हुए कार्यों का बल या प्रेरणा होती है, अतएव कार्य-सिद्धि में संकल्प का बहुत बड़ा महत्व है।

संकल्प और विकल्प दोनों का नाम बहुत बार साथ-साथ लिया जाता है। पर विकल्प और संकल्प में बहुत अन्तर है। विकल्प में तर्क-वितर्क और शंकाशीलता प्रधान है, जो संकल्प में कोई भी शुभ कार्य करने का दृढ़ निश्चय प्रधान होता है। वैदिक ग्रन्थों में दानादि बहुत से शुभ कार्यों के लिये एक विशेष प्रकार के मन्त्रोच्चारण द्वारा संकल्प किया एवं कराया जाता है, और उसका मतलब भी यह है कि मैं अमुक कार्य करने का दृढ़तापूर्वक निश्चय करता हूँ। संकल्प में यह बल होना चाहिये कि—

देहं पातयामि, कार्यं साधयामि

"करूँगा या नहीं" संकल्प पर अडिग रहे, और ऐसे संकल्प ही वास्तव में सिद्धि के कारण होते हैं। किसी भी कार्य को अंतिम सफलता तक पहुँचाने के लिये ऐसे संकल्पों की नितान्त आवश्यकता होती है, अन्यथा होता यह है कि थोड़ी सी भी विघ्न-बाधा उपस्थित हुई कि कार्य करने में वह उत्साह नहीं रहता और उसे बीच में ही छोड़ दिया जाता है। एक श्लोक में कहा है कि "बहुत से लोग तो विघ्नों के डर से कार्य आरम्भ नहीं करते, कुछ व्यक्ति हिम्मत करके आरम्भ करते हैं पर विघ्न उपस्थित होने पर बीच में ही छोड़ देते हैं। लेकिन धीर व उत्तम पुरुष वही हैं, जो बार-बार और कठिन से कठिन बाधाओं के उपस्थित होने पर भी घबराते नहीं, हटते नहीं" ऐसे ही पुरुष सिद्धि पाने के अधिकारी होते हैं। संकल्प करने से पहले मनुष्य को अपनी स्थिति और शक्ति की तौल लेना चाहिये। बिना विचारे केवल आवेश और जोश में जो संकल्प किये जाते हैं, वे बहुत बार पूरे नहीं पड़ते अतः ऐसे संकल्पों का कोई मूल्य भी नहीं। वैसे तो संसार में कोई भी बात असम्भव नहीं पर उन लोगों के लिए जो आत्मिक शक्ति के भंडार होते हैं, साधारणतया स्थिति और शक्ति का विचार करके ही संकल्प किया जाना अच्छा है। पर कोई भी निश्चय कर लेने के बाद उससे पीछे न हटना और जीवन के अन्तिम क्षण तक उन संकल्पों को कार्यकारी बनाने में लगे रहना आवश्यक है। यद्यपि बहुत से कार्य एक जन्म में ही पूरे नहीं हो पाते क्योंकि आयुष्य बहुत ही सीमित है और बहुत बार उचित एवं आवश्यक साधन सामग्री प्राप्त हुए बिना हम इच्छित एवं निश्चिन्त कार्य को पूरा नहीं कर पाते, तो भी आस्तिक व्यक्ति को हतोत्साहित नहीं होना चाहिये, क्योंकि इस जन्म के संस्कार अगले जन्म में भी प्रेरणा देते हैं और इस तरह बहुत बार बड़ी सिद्धियाँ जन्म-जन्मान्तर की साधना के बाद भी मिलती हैं। साधना से भ्रष्ट हो जाने पर भविष्य के लिये मार्ग दुर्लभ एवं सुगम हो जाता है।

संकल्प शुभ और शिव ही किये जाँय। बहुत बार बिना आगे पीछे के परिणाम को सोचे संकल्प किये जाते हैं, वे विपरीत परिणाम ही लाते हैं। अच्छा करते हुए भी बुरा फल निकलता है। अतः दीर्घ दृष्टि से हिताहित का विचार करके ही कोई निश्चय करना चाहिए। विचारों के साथ-साथ प्रवृत्ति भी तदनुरूप शीघ्र ही आरम्भ कर देनी चाहिये। देरी या शिथिलता कार्य सिद्धि में बाधक है और एक बार कोई काम करना टल गया तो फिर प्रायः टलता ही जायगा। फिर विचारों की कमजोरी मनुष्य को घर दबाती है। "अच्छा अब नहीं तो फिर सही" इस तरह की कमजोरी न लाकर संकल्प करने के साथ-साथ ही कार्य प्रारम्भ हो जाना चाहिये। सबसे पहले साधन सामग्री को जुटाना आवश्यक होता है फिर मन, वचन और काया की प्रवृत्ति, संकल्प और सिद्धि के बीच का मार्ग है। अतः साधनों का तदनुरूप उपयोग किया जाना आवश्यक है।

जितने भी महापुरुष हो गये हैं उन सब के जीवन को सामने रखने से मनुष्य को बहुत बल मिलता है। इस प्रकार किस स्थिति में किस तरह का संकल्प उन्होंने किया और फिर उसे कार्यकारी बनाने के लिये किस तरह पूरी लगन एवं शक्ति के साथ जुट गये, कैसी भयंकर व कठोर बाधाएँ उनके सामने आईं, पर उन्होंने उन सब पर विजय प्राप्त की, अपने संकल्प पर दृढ़ रहे और इसी कारण वे सिद्धियाँ प्राप्त कर सके। उन आदर्श पुरुषों का महान एवं उदार चरित्र हमारे सामने रहेगा तो हम भी उन्हीं के अनुसार कार्य कर सकेंगे।

संकल्पों को सफलीभूत बनाने के लिये चित्त शुद्धि और प्रभु स्मरण बहुत ही आवश्यक है। बहुत बार मलीन विचार हमें आकर ऐसे घेर लेते हैं कि शुभ संकल्प उनसे दब जाते हैं। अतः चित्त शुद्धि का प्रयत्न बराबर रखा जाना आवश्यक है। मलीन एवं विपरीत विचारों के आते ही सावधान होकर उन्हें दूर हटाने के लिये कमरकस लेनी चाहिए जिससे वे सबल और स्थायी न हो सकें। प्रभु स्मरण तो मनुष्य में अपूर्व शक्ति का संचार करता ही है। बहुत बार मनुष्य विपदाओं और कष्टों से हार जाता है और उसे भविष्य का मार्ग सूझ नहीं पड़ता तो वह अपनी असफलता और दीनता किसी महापुरुष के सामने प्रकट करता है और अपने को उनके चरणों में अर्पित कर देता है। तब अनुभव होता है कि उसका भार बहुत कुछ हल्का हो गया, चित्त की व्याकुलता के कारण जो मार्ग उसे दिखायी देना बन्द हो गया था, चित्त के शांत होते ही उसके द्वार खुल जाते हैं। उस समय के अपूर्व आनन्द को शब्दों द्वारा नहीं कहा जा सकता। सच्ची पुकार और अपूर्णता शुभ संकल्पों की पूर्ति के लिये बहुत ही कारगर सिद्ध होती है, और सिद्धि का मार्ग सुगम हो जाता है।

अणुव्रत महाव्रतादि कोई व्रत-नियम दृढ़ संकल्प के बिना ग्रहण नहीं किये जा सकते। कोई भी दुर्व्यसन छोड़ना दृढ़ संकल्प के बिना नहीं हो सकता। जिन बुराइयों से हम त्याग—मनोबल की कमी के कारण नहीं कर पाते उन्हें दृढ़ संकल्प से चाहे वे कितनी ही पुरानी हों, सहज में ही छोड़ सकते हैं। शिव संकल्प ही सिद्धि का कारण है।

(169)
735|135

दिगम्बर-श्वेताम्बर-मान्यता भेद

[ले०—श्री अगरचन्दजी नाहटा]

जैनसमाजमें साधारण एवं नगण्य मत भेदोंके कारण कई सम्प्रदायोंका जन्म हुआ, और वे बहुत सी बातोंमें मत-ऐक्य होने पर भी अपनेको एक दूसरेका विरोधी मानने लगे। इसी कारण हमारा संगठन तथा संबल दिनोंदिन छिन्न भिन्न होकर समाज क्रमशः अवनति-पथमें अग्रसर हो गया।

अब ज़माना बदला है, संकुचित मनोवृत्ति वालोंकी आँखें खुली हैं। फिर भी कई व्यक्ति उसी प्राचीनवृत्तिका पोषण एवं प्रचार कर रहे हैं, लोगोंके सामने क्षुद्र क्षुद्र बातोंको 'तिलका ताड़' बनाकर जनताको उकसा रहे हैं। अतः उन भेदोंका भ्रम जनताके दिलसे दूर हो जाय यह प्रयत्न करना परमावश्यक है।

श्वे० और दि० समाज भी इन मत भेदोंके भूतका शिकार है। एक दूसरेके मन्दिरमें जाने व शास्त्र पढ़नेसे मिथ्यात्व लग जानेकी संभावना कर रहे हैं। एक दूसरेके मंदिरमें वीतरागदेवकी मूर्तिको देख शान्ति पाना तो दूर रहा उलटा द्वेष भभक उठता है। पवित्र तीर्थ स्थानोंके झगड़ोंमें लाखों रुपयोंका अपव्यय एवं पक्षपातका निरपोषण एवं आपसी मनोमालिन्यकी अभिवृद्धि होरही है।

एकके मंदिरमें अन्यके जाने मात्रसे कई शंकाएँ उठने लगती हैं, जानेवालेको अपनी अभ्यसित संकुचितवृत्तिके कारण भक्ति उदय नहीं होती। कोई कोई भाई तो एक दूसरे पर आक्षेप तक कर बैठते हैं—पूजा-पद्धति आदि सामान्य भेदोंको आगे कर व्यर्थका वितंडावाद खड़ा कर देते हैं। इन सब बातोंका मैं स्वयं भुक्त-भोगी हूँ। मैं जब कलकत्तेमें रहता था जाता हूँ तो मेरा साहित्यिक कार्योंके वश अन्वेषण आदिके लिये अक्सर दिगम्बर-मंदिरोंमें जाना हो जाता है। तो कई भाई शंकाशील होकर कितनीही व्यर्थकी बातें पूछ बैठते हैं? आप कौन हैं? क्यों आये हैं? अजी आप तो जैनाभास हैं, आपकी हमारी तो मान्यतामें बहुत अंतर है! इत्यादि। इसी प्रकार एक बार मैं नागौरके दिगम्बर मंदिरोंमें दर्शनार्थ गया तो एक भाईने श्वे० साभरण मूर्तिके प्रसंग आदिको उठाकर बड़ा वाद-विवाद खड़ा कर दिया, और मुझे उद्देश्य कर श्वे० समाजकी शास्त्रीय-मान्यता पर व्यर्थका दोषारोपण करना प्रारंभ कर दिया। ये बातें उदाहरण स्वरूप अपने अनुभवकी मैंने कह डाली हैं। हमें एक दूसरेसे मिलने पर तो जैनत्वके नाते वात्सल्य प्रेम करना चाहिये, शास्त्रीय विचारोंका विनिमय कर ज्ञानवृद्धि करनी चाहिये;उसके बदले एक दूसरेसे एक दूसरेका मानो कोई वास्ता ही नहीं, मान्यताओंमें आकाश पातालका अंतर है ऐसा उद्भासित होने लगता है। कहाँ तक कहूँ हम एक दूसरेसे मिलनेके बदले दूरातिदूर हो रहे हैं।

अब हमें विचारना यह है कि हमारेमें ऐसे कौन कौनसे मतभेद हैं जिनके कारण हमारी यह परिस्थिति और यह दशा हो रही है। वास्तवमें वे भेद कहाँ तक ठीक हैं? और किन भावनाओं विचारधाराओंसे हम उनका समाधान कर एक सूत्रमें बँध सकते हैं?

साधारणतया दिगम्बर-श्वेताम्बर भेद ८४ कहे जाते हैं। इन ८४ भेदोंकी सृष्टि-प्रसिद्धि दि० पं० हेमराजजी कृत चौरासी बोल एवं श्वे०यशोविजयजी रचित 'दिक्पट चौरासी बोल' नामक ग्रन्थोंके आधारसे हुई प्रतीत होती है। पर वर्तमानमें ये दोनों ग्रन्थ मेरे सन्मुख न होनेसे उपापोह नहीं किया जासकता। दि० श्वे० भेदोंकी उत्कृष्ट संख्या ७१६ होनेका भी उल्लेख मैंने कहीं देखा है, पर वे कौन कौनसे हैं ? उनकी सूची देखनेमें नहीं आई।

बीकानेरके ज्ञान-भंडारों एवं हमारे संग्रहमें भी दि० श्वे० भेदोंकी कई सूचियाँ मेरे अवलोकनमें आई हैं। उनमें एक दो प्रतियोंमें तो भेदोंकी संख्या ८४ लिखी है,पर अन्य प्रतियोंमें कई बातें अधिक भी लिखी गई हैं। अतः उन सबके आधारसे जितने भेदोंका विवरण प्राप्त होता है उनकी सूची नीचे दीजाती है—

इन भेदोंको मैंने तीन भागोंमें विभक्त कर दिया है (१) जिन बातोंको श्वेताम्बर मानते हैं, दिगम्बर नहीं मानते; (२) जिन्हें दिगम्बर मानते हैं; श्वेताम्बर नहीं मानते, (३) वस्तु दोनों मानते हैं पर उनके प्रकारोंकी संख्यामें एक दूसरेकी मान्यतामें तारतम्य या भेद है।

(१) वे बातें जिनको श्वेताम्बर मानते हैं पर दिगम्बर नहीं मानतेः—

१ केवलीका कवलाहार
२ केवलीका निहार
३ केवलीको उपसर्ग अशुभ वेदनीय कर्मोदय
४ भोगभूमियोंका निहार
५ त्रिषष्टि शलाका पुरुषोंका निहार
६ ऋषभदेवका सुमंगलासे विवाह
७ तीर्थंकरोंके सहोदर भाइयोंका होना
८ स्त्री-मुक्ति
९ शूद्र मुक्ति
१० वस्त्र-सहित पुरुष-मुक्ति
११ गृहस्थ वेषमें मुक्ति
१२ साभरण एवं कछोटे वाली प्रतिमापूजन
१३ मुनियोंके १४ उपकरण
१४ मल्लिनाथ तीर्थंकरका स्त्री लिंग
१५ पात्रमें मुनि आहार
१६ एकादश अंगोंकी विद्यमानता
१७ द्रौपदी के पाँच पति
१८ वसुदेवके ७२ हज़ार स्त्री
१९ भरतचक्रवर्तीको आरिसाभवनमें केवलज्ञान
२० भरत चक्रीके सुन्दरी स्त्री
२१ सुलसाके ३२ पुत्रोंका एक साथ जन्म
२२ ऋषभदेवकी विवाहिता सुमंगलाके ९९ पुत्र-जन्म
२३ भगवानकी १७ प्रकारी या अंग अग्र, भावपूजा
२४ समुद्रविजयकी माद्री बहिन दमघोषकी स्त्री थी
२५ प्रभु मुनिसुव्रतने अश्वको प्रतिबोध दिया
२६ अकर्म भूमिके युगलिक हरि-हरिणीसे हरिवंश चला
२७ संघादिके लिये मुनि युद्ध भी करे
२८ मल्लिनाथजीका नीलवर्ण
२९ भगवान्की दाढ़को देव-इन्द्र स्वर्ग लेजाकर पूजे
३० देव मनुष्य-स्त्रीसे संभोग कर सके
३१ उपवासमें औषध अफीमादिका ले सकना
३२ बासी पक्वान भोजन (जल रहित पक्वान बासी नहीं)
३३ शूद्र-कुम्हार आदिके घरसे मुनि आहार ले सके
३४ चमड़ेकी पखालका जल पी सकना
३५ महावीरका गर्भापहार
३६ महावीरकी प्रथम देशना-निष्फल

३७ महावीरस्वामीको तेजोलेश्याका उपसर्ग
३८ महावीरके जन्माभिषेकमें मेरु-कम्पन
३९ महावीर स्वामीका गर्भमें अभिग्रह करना
४० महावीर-वंदनार्थ चंद्र-सूर्यका मूल विमानसे आगमन
४१ महावीर विवाह, कन्या जन्म, जामाता जमालि
४२ महावीर-समयमें चमरेन्द्रका उत्पात
४३ २५॥ आर्य देश
४४ महावीरका विद्यालय महोत्सव
४५ महावीरको छींक आना
४६ ऋषभदेवका युगलिके रूपमें जन्म
४७ साधुकी आहारादि विधिमें भिन्नता
४८ आदीश्वरका ४ मुष्टि लोंच ❀
४९ तीर्थंकरके स्कंध पर देवदुष्य वस्त्र
५० स्नात्र महोत्सवके लिये इन्द्रका ५ रूप धारण करना
५१ तीर्थंकरोंका संवत्सरीदान
५२ मरुदेवीका हाथी पर चढ़े हुए मोक्ष जाना
५३ कपिल केवलीका चोरके प्रतिबोधनार्थ नाटक करना
५४ लब्धि संपन्न मुनि एवं विद्याधर, मानुषोत्तर पर्वतके आगे भी जावें।
५५ ऋषभदेवादि १०८ जीव एक समयमें मोक्ष गये
५६ साधु अनेक घरोंसे भिक्षा ग्रहण करें।
५७ ऋषभदेवजीका बाल्यावस्थासे दीक्षा तक कल्प-वृक्षोंके फलोंका आहार
५८ बाहुबलि-देहमान ५०० धनुष्य
५९ त्रिपृष्ट वासुदेव बहिनकी कुक्षिसे उत्पन्न हुए
६० श्रावकोंके व्रतोंमें ६ छठी आगार
६१ चक्रवर्तीका ६४ हज़ार रूप धारण कर सब पत्नियों से संभोग
६२ गंगादेवीसे भरत चक्रवर्तीका संभोग
६३ यादव मांसभक्षी भी थे
६४ उत्कृष्ट १७० तीर्थंकर एक समय होते हैं
६५ बाहुबलिको ब्राह्मी सुन्दरीके वचन श्रवणकर कैवल्य होना
६६ नाभि-मरुदेवी युगलिक थे।

(२) वे बातें जिन्हें दि० मानते हैं श्वे० नहीं मानते—

६७ चौबीस काम पदवी
६८ युगलिक एवं केवलियोंके शरीरका मृत्युके अनन्तर कर्पूरादिके समान उड़ जाना बिखर जाना
६९ विभाग नं०१ की बातोंका विपरीत रूप; जैसे दि० नग्नावस्थाके बिना मोक्ष न हो, स्त्रीको मोक्ष व पंच महाव्रत न हों इत्यादि। एवं नं०(१) विभाग योग्य और भी उनके साधारण भेद लिखे मिलते हैं जिनका समावेश ऊपरकी बातोंमें ही होजाता है। अतः व्यर्थकी पृष्ठ एवं नम्बर संख्या बढ़ाना उचित नहीं समझकर उन्हें छोड़ दिया गया है।

(३) वस्तुकी मान्यतामें तारतम्य भेद—

वस्तु	श्वेताम्बरमान्यता	दिगम्बर मान्यता
७० स्वर्ग संख्या	१२	१६ *
७१ इन्द्र संख्या	६४	१००
७२ चक्रवर्तीकी स्त्री संख्या	६४ हज़ार	९६ हज़ार

❀ 'पउमचरिय'के तृतीय पर्वकी १३६वीं गाथाके निम्न वाक्यमें पंच मुष्टि लोंच करना लिखा है—
"सिद्धाणं णमुक्कार काऊणय पंचमुट्ठियं लोयं।"
—सम्पादक

* दिगम्बर सिंहनन्दी आचार्यने, वरांग चरितमें, स्वर्ग संख्या १२ दी है, इससे दिगम्बर-सम्प्रदायमें इस संख्याका सर्वथा एकान्त नहीं है।—सम्पादक

७३ स्वर्गलोक प्रतर संख्या	६२	६३
७४ अन्तर द्वीपसंख्या	५६	९६ ‡
७५ तीर्थंकर माताके स्वप्न	१४	१६
७६ नेमिनाथ-दीक्षान्तर कैवल्योत्पत्ति	५४ दिन बाद	५६ दिन बाद
७७ जन्माभिषेक समय इन्द्रके आने का वाहन	पालक विमान	ऐरावत हाथी
७८ प्रलय-प्रमाण	छहखंड प्रलय	१आर्यखंड प्रलय
७९ मुनिके पारने आदिके अवसर पर भोजन लेना	एकसे अधिक बार भी भोजन ले सके	एक ही बार
८० कालद्रव्य	स्वतंत्र द्रव्य नहीं†	स्वतंत्र द्रव्य है
८१ अठारह दोष	दानादि अन्तराय५, क्षुधा, तृषा, हास्य, रति, अरति, जरा, रोग, भय, जुगुप्सा, शोक, जन्म, मरण, काम, मिथ्यात्व, मद, राग, अज्ञान, निद्रा, अ- विरति, राग, द्वेष*	द्वेष, मोह, अरति, निद्रा, विस्मय, स्वेद, खेद, चिन्ता, विषाद
८२ तीर्थंकरोंकी वाणी मुखसे निकले		मस्तकसे
८३ दश आश्चर्य कृष्ण अमर कंका गमनादि		भिन्न ही
८४ तीर्थंकरोंके भव-जन्म स्थानादि तारतम्य		

इसीप्रकार उदयतिथि, देव देहमान, इंद्राणी संख्या आदि कई बातोंमें और भी तारतम्य है।

इस सूचीको पढ़कर पाठक स्वयं समझ सकेंगे कि भेद कितनी साधारण कोटिके हैं। ऐसे नगण्य भेद दि० श्वे० में ही क्यों, एक ही सम्प्रदायके विभिन्न ग्रन्थोंमें भी असंख्य पाये जाते हैं। कथानुयोगके जितने भी ग्रंथ देख लीजिये किसीमें कुछ तो किसीमें कुछ; इस प्रकार अनेक असमान बातें मिलेंगी। कथा साहित्यकी बात जाने दीजिये, श्वेताम्बर आगम ग्रंथों एवं प्रकरणोंमें अनेक विसंवाद पाये जाते हैं, जिनके संग्रहरूप कविवर समयसुंदरजीके 'विसंवादशतक' आदि मौलिक ग्रंथ भी उपलब्ध है। जब एक ही संप्रदायमें अनेक विचार भेद विद्यमान हैं तो भिन्न सम्प्रदायोंमें होना तो बहुत कुछ स्वाभाविक तथा अनिवार्य है। अतएव ऐसे नगण्य भेदोंके पीछे व्यर्थकी मारामारी कर विरोध बढ़ाना कहाँ तक संगत एवं शोभाप्रद हो सकता है? पाठक स्वयं विचार करें।

‡ दिगम्बराचार्य जिनसेनने, आदिपुराणके ३७वें वर्षमें, 'भवेयुरन्तर द्वीपाः षट्पंचाशत्प्रमा मिताः' वाक्यके द्वारा अन्तर द्वीपोंकी संख्या ५६ दी है, इससे इस संख्याका भी सर्वथा एकान्त नहीं है। —सम्पादक

† श्वेताम्बर 'भगवती' सूत्र आदि आगमोंमें काल को स्वतन्त्र द्रव्य भी माना है, ऐसा पं० सुखलालजी अपने चौथे कर्म ग्रन्थके परिशिष्टमें, पृष्ठ १५७ पर सूचित करते हैं। —सम्पादक

* श्वेताम्बरीय 'लोकप्रकाश' ग्रन्थमें १८ दोषोंका एक दूसरा प्रकार भी दिया है, जिसमें दानादि पांच अन्तराय, जुगुप्सा, मिथ्यात्व, अविरति द्वेष नामके दोष नहीं, इनके स्थान पर हिंसा, अलीक, चोरी, क्रोध, मान, माया, लोभ, मद, मत्सर दोष दिये हैं और कामके लिये क्रीडा, तथा रागके लिये प्रेम शब्दोंका प्रयोग किया है। —सम्पादक

थोड़ी देरके लिये यदि यह मान भी लिया जाय कि ऐसे भेद बहुत हैं, फिर भी मेरी नम्र विनति यह है कि हमें साथ साथ यह भी तो देखना चाहिये कि हममें विचारों-मान्यताओंकी एकता कितनी है? यदि सदृशता-एकता अधिक है तो फिर उससे लाभ क्यों न उठाया जाय? इससे रागद्वेषका उपशम होगा, आत्माकी निर्मलता बढ़ेगी, जो कि सारे कर्त्तव्योंका—क्रिया कांडोंका चरम-लक्ष्य है। आशा है हमारा समाज शांत हृदयसे इसपर विचार कर, जिस हद तक हम मिलजुलकर रह सकते हैं—मान सकते हैं यहाँ तक अवश्य ही संगठित होकर सद्भाव पूर्वक कार्य करनेका पूरा प्रयत्न करेगा।

अब रहा हमारी एकताका दृष्टिकोण। मैं जहाँ तक जानता हूँ कथा एवं विधि विधानके भेदोंको यदि अलग कर दिया जाय तो तात्विकभेद २-४ ही नज़र आएँगे। यथाः—स्त्रीमुक्ति, शूद्रमुक्ति, दिगम्बरत्व आदि। इनमें झगड़नेकी कोई बात नहीं है; क्योंकि इस पंचम कालमें भरत क्षेत्रसे मुक्ति जाना तो श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदाय नहीं मानते। अतः वर्तमान समाजके लिये तो ये विषय केवल चर्चास्पद ही हैं। दिगम्बरत्वके सम्बन्धमें भी तत्वकी बात तो यह है कि दिगम्बरत्व बाह्य वेष है अतः इसके ध्येयको ही स्थान देना या लक्ष्यमें रखना चाहिये। वास्तवमें इसका साध्य निर्ममत्व भाव है, जो कि उभय सम्प्रदायोंके लिये उपास्य है। जो ध्येयको सन्मुख रखते हुए व्यवहार मार्गका अनुसरण करते हैं, उनके लिये चाहे दिगम्बरत्व उसके अधिक सन्निकट हो पर एकान्त बाह्य वेषको ही उच्च एवं महत्वका स्थान नहीं मिल सकता केवलिमुक्ति आदि बातें तो हमारे साधना मार्गमें कोई मूल्यवान मतभेद या बाधा उपस्थित नहीं करतीं। केवली कवलाहार करें या न करें हमें इसमें कोई लाभ या नुकसान नहीं हो सकता। इसी प्रकार अन्य मतभेदोंकी कट्टरताका परिहार भी विशाल अनेकान्त-दृष्टिसे सहज हो सकता है। वास्तवमें हमारा लक्ष्य एवं पथ एक ही है। गति-विधिकी साधारण असमानताको अलग रखकर हमें अपने निर्मल विवेक द्वारा आपसी तुच्छ विरोध तथा संकुचित मनोंको विसर्जन कर जैनत्वके प्रगट करनेमें अभिन्नभावसे अनवरत प्रयत्न करना चाहिये।

विरोधाग्निकी ज्वाला दि० श्वे० में परस्पर ही सीमित नहीं, बल्कि दिगम्बर-दिगम्बरोंमें और श्वेताम्बरों-श्वेताम्बरोंमें भी साधारण मत भेदोंके कारण वह प्रज्वलित है। श्वेताम्बर-दिगम्बर सामयिकपत्रोंमें कई पत्रोंका तो एकमात्र विषय ही यह विरोध बन रहा है। कालमके कालम एक दूसरेके विरोधी लेखोंसे भरे रहते हैं, ऐसे विरोधवर्द्धक व्यक्तियों तथा पत्रोंसे समाजका क्या भला होनेको है?

हम जैनी अनेकान्ती हैं, अनेकान्तके बलपर विभिन्न दृष्टिकोणोंका समन्वय कर हम विरोधको पचा सकते हैं, यह विवेक हम भूलसे गये हैं। वर्त्तनमें अहिंसा और विचारोंमें स्याद्वाद, ये दो भगवान महावीरके प्रधान सिद्धान्त हैं; पर हम लोग इन दोनोंसे ही बहुत दूर हैं! कीड़े-मकौड़े आदि सूक्ष्म जीवों पर दया करना जानते हैं पर ग़रीब भाइयों तथा दस्सों आदिको गले लगाना नहीं जानते? उनपर अत्याचार करते व उनके अधिकारोंको छीनते हमें दया नहीं आती! आपसी फूटका बोलबाला है। अहिंसाके उपासक शान्तिनिधि एवं विश्वप्रेमी होने चाहियें, पर हमारी वर्त्तमान अवस्था इसके सर्वथा विपरीत है। इसी प्रकार अनेकान्त अथवा स्याद्वादका जीवनमें कोई प्रभाव प्रतीत नहीं होता, वह तो केवल ग्रन्थोंका ही विषय रह गया है। अतः इसकी जीवनमें पुनः प्रतिष्ठा करनेकी आवश्यकता है।

हमारा दि० श्वे० दोनों समाजोंसे विशेष अनुरोध है कि वे अपने आपसी मनोमालिन्यको धो बहायें, तीर्थोंके झगड़ोंको मिटा डालें और जैनत्वके सच्चे उपासक बनकर संसारके सामने अपना अद्भुत एवं अनुपम आदर्श रखें।

1094 (170)

सम्मेलन पत्रिका - पृ० २९-३१

No - 170

दो हिन्दी ग्रन्थों की संस्कृत टीकाएँ

[लेखक—श्री अगरचन्द नाहटा]

संस्कृत ग्रंथों को जन साधारण के लिए उपयोगी बनाने के लिए उन पर हिन्दी भाषा में टीकायें व अनुवाद १७वीं शताब्दी से अब तक निरंतर किये जा रहे हैं और वह उचित एवं उपयोगी ही है पर आप को यह जानकर आश्चर्य सा होगा कि कतिपय भाषा ग्रन्थों पर जैन विद्वानों ने संस्कृत में भी टीकायें निर्माण की हैं।

इस पद्धति का आरंभ १४वीं शताब्दी से अपभ्रंश के 'संदेश राव' पर जो कि मुसलमान कवि अब्दुलरहमान ने बनाया है सं० १४६४ में रुद्रपालकीय गच्छ के जैनपति लक्ष्मीचंद ने संस्कृत टीका[1] बना के किया।

इसके पश्चात् मैथिल हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि विद्यापति रचित 'कीर्तिलता' नामक अपभ्रंश काव्य पर एक संस्कृत टीका प्राप्त हुई है जो कि बीकानेर राज्य की अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में विद्यमान है। प्रस्तुत टीका के रचयिता का उल्लेख न होने से नाम अज्ञात है पर जैनेतर प्रतीत होता है इसकी प्रति सं० १६७२ की लिखी गई है अतः टीका इससे पूर्व निर्मित निश्चित ही है।

अपभ्रंश के पश्चात् प्रान्तीय भाषाओं को लें तो सं० १६३८ में बीकानेर के प्रधान राजस्थानी कवि पृथ्वीराज राठौर ने 'कृष्ण रुक्मिणी वेलि' नामक एक काव्य बनाया। इसकी अपने समय में ही बड़ी भारी प्रसिद्धि हुई। लाखे चरण ने इस पर कुछ ही समय के पश्चात् राजस्थानी भाषा में टीका कर बनाई। उसके पश्चात् जैन कवि सारंग ने इस काव्य की 'सुबोध मञ्जरी' नामक टीका सं० १६७८ पालणपुर में संस्कृत भाषा में बनाई।

इसी प्रकार जैन कवि सार ने भी सं० १७०३ में कृष्ण के लिये वेलि की संस्कृत टीका निर्माण की।

पर ब्रजभाषा-हिन्दी के काव्य पर अभीतक कोई संस्कृत टीका नहीं बनी थी, जिसका उल्लेख करते हुए खटतरगच्छीय जैन पति समरथ ने सं०

---

१. सिन्धी ग्रन्थमाला से प्रस्तुत सटीक ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है।

१७५५ सोजालिपुर में केशव दास की 'रसिक प्रिया' पर संस्कृत टीका बनाकर प्रारम्भ किया।

इसके अनुकरण में सं० १८६० माघ शुक्ल बीकानेर में महाराजा पूरनसिंह जी के राज्यकाल में नागपुराय लोक गच्छीय वीरचंद्र के शिष्य परमानंद ने सुप्रसिद्ध हिन्दी काव्य 'बिहारी सतसई' पर संस्कृत में वृत्ति निर्माण की। इन पिछली दो टीकाओं[1] का संक्षिप्त परिचय कराना इस लेख का अभीष्ट विषय है।

'रसिक प्रिया' की संस्कृत टीका

मङ्गलाचरण में प्रथमा श्लोक में कुलचंद्रि पार्श्वनाथ, दूसरे में सारदा, तीसरे में काव्य, चौथे में अपने गुरु सुमतिरत्न की प्रशंसा करते हुए 'रसिक प्रिया' पर वृत्ति बनाने व ब्रजभाषा के महत्व एवं संस्कृत टीका बनाने का उल्लेख व प्रारंभ इन शब्दों में करता है—

"गुरोः प्रसादादधिगम्य भावं कुर्वे सुवृत्तिं रसिक प्रियायाः।
विशिष्ट भावामृत पूरितायाः प्रमोदिनी नाम मनः प्रमोदात् ॥५॥
ऊर्ध्वा सुभाषा सुविशेष रम्या ब्रजस्य भाषा ललिता सुवाणी।
मुखे मुखे भिन्नतरार्थसंगादहं प्रवक्ष्यं खलु संप्रदायात् ॥६॥
प्रायेण ब्रजभाषायाः केनापि न कृता पुरा।
सुसंस्कृतमयी टीका, सुगमार्थ प्रबोधिनी ॥७॥

इह खलु ग्रन्थारंभे कवि श्री केशवदासः- सृष्टि समय परिपालनाय स्वाभिमतफल सिद्ध्यर्थं प्राप्तिरक्षित प्रेय-प्रतिबंधकविघ्न विघातक विशिष्ट-शिष्टाचारानुमिति श्रुतिबोधात्मकं समुचितेष्ट देवता श्री गणेश स्तुति कथन द्वारा मंगल माचरति। एक रदनेति—तथाच ग्रन्थादौ विषय प्रयोजन संबंधाधिकार चतुरुपमवश्यवाच्यं तत्र शृंगारादि रस वर्णन विषय प्रयोजनं च रसिक जनमतः प्रमोदापत्ति वाच्य वाचक भावः संबंध मिशासुरधिकारी चेति अविच अपार संसार पारावार बहुल भवभ्रमणा वर्त्तयतित प्राप्ततर्कितोपस्थित मनुष्यावतारस्य लब्ध गुणाद्यर प्रकारस्य प्राणिनः फलं द्वयं भोगोयोगश्च तत्राद्यः भुज्यते शब्दादिभि रिति भोगः सुखं प्रदमरः भोगः सुखे त्रयादिष्टता

---

१ आदि अन्त के समस्त श्लोक मेरे सम्पादित हिन्दी ग्रंथों का खोज भाग २ में देखिये जो कि हिन्दी विद्यापीठ उदयपुर से शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

वृत्तेश्च पूर्णिकाय मोदिति ।

अन्त—सुरभाषा तें अधिक है, ब्रजभाषा सों हेत ।
ब्रजभूषण जाको सदा मुख भूषण करि लेत ॥१७॥

व्याख्या—सुरभाषाः संस्कृत भाषायाः सकाशात् ब्रजभाषा अधिकास्ति ब्रज भूषणः कृष्णस्तं स्वमुखं भूषयति यस्याः पठनात् स्वमुख शोभा भवतीत्यर्थः ॥१

इतिश्री सकल वाचकचक्र चूडामणि वाचकश्री मतिरत्न गर्ग शिष्य पण्डित समर्थी. हनविचितयां रसिक प्रिया भाषा ग्रन्थ समाप्त ग्र० १६ । इसके पश्चात् टीका कर्त्ता ने स्वगुरु परम्परा वाचना कालादि की विस्तृत प्रशस्ति दी है ।

'बिहारी सतसई' की संस्कृत टीका

आदि—तत्वश्री जिनाधीश श्री पार्श्वं पार्श्व सेवितं ।
विहारी कृत ग्रन्थस्य, वक्ष्ये काव्यां सुबोधिकां ॥

मूल—मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोइ ।
या तन की झाँई परइ, स्याम हरित दुति होइ ॥१॥

व्याख्या—सा राधा नाम्नी नागरी मम भव बाधा हरतु । यस्य राधायाः तनोद्युतिः परीत कृष्णकाये तदा श्याम वर्णः हरित द्युतिर्भवति कृष्ण शरीर कांति कृष्ण राधायाः गौर वर्णतया मिश्रिता हरित द्युति भवति गौर वर्ण मिश्रिता श्यामवर्णा हरिद्भवतीति सिद्धः ।

द्वितीयोर्थ :—हा राधा नागरिः नायकः कृष्णो मम भव बाधाः हरतु यस्य कृष्ण स्वतनुद्युति यत्र करे पतित तदा श्यामं यार्क हरि दूरीस्यात् द्युतिः स्यात् ।

तृतीयोर्थस्तु वैद्य प्रति रोगिय उक्तिः हे वैद्य मम भवबाधा रोग व हरतु तदा वैद्योक्तं राधा नागरि सोइ राधा मुष्टिः नागरि मोथ सोइ सिंधु हरोवा यातने कृष्ण झांई पतिति ताहरि रावे भैषजैः दूरीस्यात् तद्द्युति होय सो पूर्वोक्ता द्युतिः तद्द्युति स्यात् तुर्योर्थस्तु वृस्य शरीर द्युति नाश्रित्य हरित द्युति रूप मेव ॥१॥

अन्त—यद्यपि है शोभा घनी सुगता हाथ में लेख ।
गुही टौर को ठौर तै, उर में होत विसेख ॥२१॥

एक दोहा और देकर वृत्तिकार ने अपने गुरु एवं रचना काल तथा स्थान सूचक प्रशस्ति दी है ।

उपर्युक्त दोनों टीकायें बीकानेर के बृहत् जैन ज्ञान भण्डार में प्राप्त हैं।

नागरी प्रचारिणी वर्ष ६१० में प्रकाशित बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर के "बिहारी सतसई सम्बन्धी" साहित्य लेख में 'बिहारी सतसई' पर दो संस्कृत गद्य की टीकाओं (पहली सं० १८४४ वि० की और दूसरी सं० १८६१ के पश्चात् रचित) एवं दो संस्कृत पद्य की टीकाओं का विवरण प्रकाशित है। प्रस्तुत लेख द्वारा बिहारी सतसई की एक अन्य संस्कृत टीका प्रकाश में आ रही है।

(171) सम्मेलन पत्रिका – पौष – फाल्गुन 1811

श्री अगरचंद नाहटा

२२७ वर्ष पूर्व—कवि गिरधारी कृत 'भोजन-सार'

किसी भी साहित्य का महत्त्व उसकी उपयोगिता पर निर्भर है। कोई भी ग्रन्थ चाहे कितना भी छन्द, अलंकार आदि काव्य-गुणों से परिपूर्ण हो पर यदि कोई व्यक्ति उसकी भाषा और विषय को समझ न पाये तो वह ग्रन्थ उपयोगी नहीं हो सकता। साहित्य का अर्थ है जो हित के साथ हो अर्थात् जनता के हित के लिये बनाया गया हो और जिससे जनता का वास्तविक हित हो। यद्यपि बहुत-से लोग कला के जिस प्रकार दो भेद करते हैं—ललित कला और उपयोगी कला। उसी तरह वह साहित्य के भी अनेक भेद करते हैं, कोई केवल काव्यत्व-पूर्ण रचना को ही साहित्य मानते हैं अन्य को वाङ्मय के अन्तर्गत समाविष्ट करते हैं। मेरी राय में साहित्य का यह संकुचित अर्थ है। शब्दों की अपेक्षा अर्थ और भावों को प्रधानता मिलनी चाहिये। रसात्मक वाक्य को काव्य की संज्ञा दी गई है। पर रस भी अनेक हैं। उन्हें ९ की संख्या में सीमित कर देना उचित प्रतीत नहीं होता। कई लोग संत साहित्य और लोक साहित्य को साहित्य की परिधि में रखना नहीं चाहते। पर जिस तरह शृंगार, करुण आदि रस हैं उसी तरह शान्त रस भी तो है। कई विद्वानों ने तो भक्तिरस को बहुत महत्त्वपूर्ण माना है। क्योंकि उसमें तन्मयता बहुत अधिक होती है। श्री चतुरसेन शास्त्री ने तो इतिहास-रस को भी रसों में सम्मिलित किया है। जिससे मानव-हृदय में सरसता का संचार होता है, आनन्द की अनुभूति होती है। ऐसी बातों का विषय अनेक हैं। अतः रसों की संख्या ९ तक ही सीमित नहीं रहनी चाहिये। लोकसाहित्य कितना सरस और हृदयस्पर्शी है चाहे वह अशिक्षित, ब्राह्मण और स्त्री आदि की रचना क्यों न हो पर उसमें जो सरसता है उसे देखते हुये, साहित्य की परिधि से बाहर देखना किसी भी तरह उचित नहीं लगता। संत-साहित्य भी मनुष्य को भाव-विभोर कर देता है। संतों की अनुभव-वाणी के श्रवण, गायन आदि द्वारा शान्तरस की अनुपम आनन्दधारा प्रवाहित होती है। और मानव को सत् प्रेरणा देने का जो महान् कार्य करती है उसे देखते हुए संत-साहित्य को संज्ञा देनी पड़ेगी। जीवनोपयोगी और वैज्ञानिक साहित्य को आजकल साहित्य की संज्ञा दी जाने लगी है। स्तर का भेद हो सकता है पर उसकी आवश्यकता और उपयोगिता की कोई भी व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता।

भारतीय भाषाओं में विशेषतः उत्तर भारत की भाषाओं में संस्कृत के बाद सर्वाधिक साहित्य-निर्माण हिन्दी-भाषा में हुआ है। अहिन्दी भाषी प्रदेशों में भी हिन्दी साहित्य का निर्माण एवं प्रचार हुआ है। इसीलिये हिन्दी साहित्य भारत के कोने-कोने में फैला हुआ है। अभी

कि उसकी खोज, ६७ वर्षों से निरन्तर होने पर भी, इतना अधिक साहित्य अज्ञात अवस्था में पड़ा हुआ है कि उसकी पूरी जानकारी प्रकाशित होनी असम्भव है ही, पर महत्वपूर्ण रचनाओं की जानकारी भी प्रकाश में आते-आते न-मालूम कितने वर्ष बीत जायेंगे। हिन्दी साहित्य विशाल होने के साथ वैविध्यपूर्ण भी है। जीवनोपयोगी प्रत्येक विषय की रचनायें हिन्दी में मिलती हैं। पाकशास्त्र हमारे जीवन का एक आवश्यक अंग है। संस्कृत के विद्वानों ने इसके विषय में अनेक ग्रन्थ बनाये हैं। हिन्दी में भी इसकी परम्परा चालू हुई और गद्य और पद्य में विविध प्रकार के भोजन बनाने की विधियों के सम्बन्ध में कई ग्रन्थ लिखे गये। १८वीं और १९वीं शताब्दी की दो रचनाओं के सम्बन्ध में मैं इससे पूर्व अपने लेखों में प्रकाश डाल चुका हूँ। इनमें से एक हिन्दी पाक-शास्त्र की अपूर्ण त्रुटित प्रति मेरे संग्रह में है और एक भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीटयूट पूना से मंगवाई थी। उस संग्रह में भोजन-सार नामक एक अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ होने की सूचना कई वर्ष पूर्व मुझे वहाँ के क्यूरेटर स्व० परशुराम गोडे के प्रेषित सूची से मिली थी। पर जिस समय मैंने यह ग्रन्थ भेजने के लिये लिखा था उस समय वह प्रति कहीं बाहर गई हुई थी। इसलिए प्राप्त नहीं हो सकी। इस ग्रन्थ को देखने की उत्सुकता बराबर मुझे बनी रही और अभी-अभी उसकी वह प्रति मंगवाकर देखा तो इसमें केवल विविध प्रकार के भोजनों की विधि ही नहीं लिखी है वरन् प्रारम्भ के २१ पद्यों में जयपुर सम्बन्धी बहुत सी ज्ञातव्य बातें और महत्व के वर्णन पाये गये हैं। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट सन् १९०६ में प्रयागदास रचित 'भोजन विलास' नामक पाक-शास्त्रीय हिन्दी पद्यबद्ध रचना का विवरण छपा है। विजावर नरेश के पुस्तकालय में सं० १९१२ की लिखी हुई इसकी प्रति है। मूल ग्रन्थ का रचनाकाल संवत् १८८५ बताया गया है। 'भोजन-सार' जिसका परिचय इस लेख में दिया जा रहा है उसकी रचना संवत् १७९६ में हुई है। अर्थात् भोजनविलास से ८९ वर्ष पहले की यह पाकशास्त्र सम्बन्धी हिन्दी-पद्यबद्ध रचना है। ६७ पद्यों की प्रति में से कुछ पद्य-पत्रांक ४३ से ५२ तक के अभी प्राप्त नहीं हैं। ४२ वें पद्य में पद्यांक ३२५ का पाठ त्रुटित रह जाता है अर्थात् लिखते हुए छोड़ा हुआ है उसके बाद ५३ वें पद्य में पद्यांक ५१८ का पाठ शुरू होता है। अतः पद्यांक ३२५ से ५१७ तक का पाठ अप्राप्त है। कुल पद्यों की संख्या ७५९ दी हुई है। ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है। पहले में जयपुर और कवि आदि का वर्णन २७३ पद्यों में है फिर मूल ग्रन्थ पद्यांक १ से शुरू होकर ७५९ पद्यों तक है। प्रारम्भ में कवि ने शिव, गणपति, गुरु की स्तुति करके सरस्वती एवं कृष्ण की स्तुति १५ दोहों में करने के बाद २ कवित्त कृष्ण स्तुति के लिखे हैं। फिर भगवान् की सूचनिका प्रारम्भ होती है। १२ स्कन्धों की सूचनिका ५४ वें पद्य तक दी गई है। ५४ वें पद्य में संवत् का उल्लेख इस प्रकार है—

> शशि पर्यंत हुए भूमि वर्ष्य श्रुवल नमस्य।
> प्रतिपत रवि दिन निर्मिता रामचंद्र अनुजाध्य॥

फिर कृष्ण की स्तुति करते हुये ग्रन्थ रचने का प्रसंग सूचित किया है।

इन्द्र आय पाइन परयौ कामधेनु लै संग।
गिरधारी भोजन करे सोही लिखत प्रसंग॥
इन पर तन मन वारिकै, देखत रूप अपार।
जे तो भोजन हरि करे तेते लखत सवार॥६३॥

पद्यांक ६२ से देशराज वर्णन प्रारम्भ होता है। उसमें जयपुर के श्री सवाई जयसिंह आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसमें कई ऐतिहासिक तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पद्यांक १०२ से पून दौरि ताको वर्णन, नजरस वर्णन, आगम कवित प्रताप वर्णन, दान वर्णन, सोना वर्णन, शिकार वर्णन, यज्ञोपवीत के बाद आशीर्वचन का उपाय है। फिर महाराजा ने बहुत सी ब्राह्मण कन्याओं का एक साथ विवाह करवा दिया, उसका एवं यज्ञ का वर्णन किया गया है। फिर जयपुर बसाने का उल्लेख करते हुए पहले उज्जैनी बसाने और चौपड़ बाजार में हवेली बनाने का वर्णन है। महाराजा ने मंदिर में सुवर्ण कांच कैसे लगाये, अयोध्या में चौपड़ बाजार में मन्दिर और प्रयाग के मन्दिर का उल्लेख किया है। पद्यांक १३० में कन्या-विवाह का प्रसंग पूर्ण होता है और पद्यांक १४० से युद्ध वर्णन आरम्भ होता है। इसमें अनेक ऐतिहासिक युद्धों का उल्लेख करके यज्ञ का वर्णन करते हुए दिल्ली शहर के जयसिंहपुर में शहर लाने का ऐतिहासिक वृत्तान्त है। पद्यांक १८४ में जयनिवास का वर्णन करते हुए संवत् १७८४ के चैत्र-सुदी १२ शनिवार को इस नगर के जन्म होने का उल्लेख किया है। बाजार एवं गंज तथा महलों का वर्णन, पद्यों में गुदगंज बड़, अम्बाबड़, मलखा गवाई जयसिंह का वर्णन करके वाहनों में गज, पालकी, हय वाहन, रथ, ऊंट वाहन, गज-बाजि युद्ध, औरंगसाही बखत इत्यादि २६१ पद्यों तक देश, राज का वर्णन है। फिर कवि नाम-वर्णन, ग्रन्थ रचनाकाल आदि के पद्य हैं, उन्हें नीचे दिया जा रहा है।

अथ कवि नाम वर्नन

दोहा—बेटा अविचलराम को पुरहित गिरधरराम।
जाके पुत्र प्रसिद्ध है नाव सुनौ श्रीराम॥२६२॥
तानें कर जोरें कहो भोजनु देहु बताय।
श्री जैसाह महीप के भोग लगति रघुराय॥२६३॥
सोइ भोजन तुम कहौ मन मधि मोद बढ़ाय।
गिरधारी अब कहत है जो देखे मनु लाय॥२६४॥
तेरे हित ते कहत हौ भोजन विधि ही संवारि।
जो भोजन महाराजिकें सोई कहत विचारि॥२६५॥
भोजन जुगति कही कछू नाथ गु भोजन सार।
सतरैसौ अरु छियनवै जनम धरयौ मनुधारि॥२६६॥
आसोजहि में जांमीयौ बिजै सुद समौ पाय।
गिरधारी याको जन्म इनही दिन ठहराय॥२६७॥

पद्यांक २७३ से मूल ग्रन्थ के विषय का प्रारम्भ इस प्रकार होता है--
अथ भोजन प्रकार लिख्यते—

दोहा—चतुर जगत में बहुत है जानति भोजन भाय।
पाटि बाटि कहूं देखि के लेहु सवारि सुदाम ॥२७३॥

अथ भोजन-प्रकार लिख्यते, दोहा--

में पहले सालन लिख्यत गति ज्यो नारि सुजानि।
ता पीछे पकवान की कहि हौंनी के मानि ॥१॥

प्रथम पेठा के साल करिबे की विधि—

चौपाई—प्रथम पेक पेठा ले आवें। ताको नीको संख्य छिलावें।
करिकें फांक सुघर बनाय। देहु मंगार सुगंधहि लाय ॥

बघार करिबे की विधि—

चौपाई—तेर फांक पेठे का होय। घिरत पड़ाये पाच सनोय।
हींगरू के मरिची गवधार। पग्यो आनि के भाजी डारि ॥४॥

इसी तरह गोरी कहरी, श्वेत कहरी, पेठा का चतुर्थ प्रकार, इस प्रकार २९ पद्यों में पेठे के सालनों का वर्णन पूर्ण होता है फिर सूरन की विधि पद्यांक ४२ से चलती है, सीरा विधि, भाजी विधि, सूरन के मोदक, इस तरह पद्यांक ५९ तक में सूरन विधि पूर्ण होती है। फिर [illegible] विधि [illegible] कथाकू [illegible] सालन, [illegible] विधि, फिर [illegible] सालन की विधि के पद्यांक [illegible] तक में पूर्ण होती है। फिर [illegible] सालन, कचरी, मर्कोरा, सीरा, [illegible], कोंहला सालन, सीरा विधि, करीरा, [illegible], [illegible], [illegible] सालन, भूरा, [illegible], चना, इस तरह हरे सालन की विधियां पद्यांक १५७ तक में आती हैं. फिर अन्य सालन बेसन, सूरन, भूंजिया, चनी चाना की रायतो, बरा करिबे की विधि, सूरन, मूंग ३२६ उरद की, मूंगोरी, मेठोरी, छोला, बोन्दी इस प्रकार इस तरह २१८ पद्यांक तक में सालन का वर्णन पूर्ण होता है। फिर पकवानों की विधि का वर्णन करने के बाद चना के बेसन की पकौरी वाला प्रसंग अपूर्ण रह जाता है। पद्यांक ५३ में तिली चबैना, चबैना स्याऊ, उदारी चुरटी, बाजरा की चबैना, चोला की फली, उरहाक की चबैना, छोला, होला, बटला आदि चबैनों का वर्णन ५३८ पद्यांक तक करने के बाद फिर फल भोजन पद्यांक ५५० तक, फिर मेवाती, सूरन, अचारी, आमार, करोंदा, [illegible] की विधि पद्यांक ५३५ में समाप्त होती है। इसके बाद पाक बनाने की विधि लिखर सवार, सूरन, इस तरह पूर्वांक का वर्णन ६८९ में पूर्ण होता है। फिर मुंगे की तरह कारी सीरा, पाक, दुग्ध रोटी, दुग्ध लड्डू, रबड़ी, खीर, रोटी, सकरकन्द, मखाना, खांडो, अखरोट, सवार की बहुत सी विधियां बतलाई गई हैं। यह उल्लेख करने के बाद

श्रीराम महराज को भोग लगता है उन्हीं का वर्णन इस ग्रन्थ में किया गया है लिखा है--

गिरधारी श्री राम कौं महराज के मानि। लयौ भोग यह जानिक करीसु गोयो जानि ॥७५१॥
जेते भोजन में लिखे ते जु करात मनु लाय। श्री जैसाहि महीप कें निज जेवत हरिराय ॥७५२॥
ए भोजन विधि में कही महाराज घर होय। ठाकुर के परसाद कौ करत रहत नित सोय ॥७५४॥
या तो हम पहले कयौ ग्रन्थ जोग की जानि। नांव धरयो डा ग्रन्थ कौं, सुनियो वचन प्रभानि ॥७५७॥
लिख्यो वचनिका जा नियौ, समझयो नीके जात। गिरधारी हित नृपति के, कीन्हें भलो सुहात ॥७५८॥
याकें साधें मुगति हुयें या साधें हुवें भोग। गिरधारी दोउ करें मनुष्य देह करि जोग ॥७५९॥

इतिश्री भोजन सार भाषा गिरिवररामेण विरचित भोजन प्रकार समाप्तः। श्री मन्नंद नंदन नित्य वि 'प्रति' नं० १५१५।

उपरोक्त ७५७ वें पद्य में कवि द्वारा योग सम्बन्धी ग्रन्थ पहले रचे जाने का उल्लेख है उसकी खोज आवश्यक है। अन्त में इस ग्रन्थ को गिरवर राम का रचा हुआ बतलाया गया है पर वास्तव में अविचल राम के पुरोहित गिरिवर राम के लिये यह ग्रन्थ गिरधारी कवि ने जयसिंह के समय में जयपुर में बनाया, ऐसा प्रतीत होता है। प्रति के बीच के पत्र प्राप्त न होने से ग्रन्थ त्रुटित रह जाता है। अतः अन्य पूरी प्रति की खोज आवश्यक है।

(172)

No — 172

दहेज : एक ज्वलन्त समस्या और उसका व्यावहारिक समाधान

अगरचन्द नाहटा

स्त्री और पुरुष का युगल जोड़ा संसार की वृद्धि और समृद्धि का प्रमुख कारण है। प्रकृति ने इन दोनों में परस्पर ऐसा आकर्षण पैदा कर दिया है जिससे वयस्क होने पर दोनों का सम्बन्ध अनिवार्य व आवश्यक-सा हो जाता है। भीतर में सुप्त या गुप्त काम वासना प्रबल-रूप में प्रकट होती है। उस पर नियंत्रण करने एवं मर्यादित रखने के लिए विवाह की प्रथा चालू की गई। शारीरिक मिलन के साथ मन का या हृदय का मेल बनता है। व पारस्परिक प्रेम जीवन भर एक-दूसरे को निभाने के लिए प्रेरणा देता है। काम वासना पर नियन्त्रण नहीं रखा जाय तो समाज में बड़ी अव्यवस्था फैल जाती है। उन्मुक्त काम वासना के दुष्परिणाम स्वरूप आज पाश्चात्य देशों में जो खेल खेले जाते हैं, नग्न नृत्य आदि होते हैं वे सब हमारे सामने हैं। इससे शारीरिक और मानसिक विकृतियां व रोग बढ़ते जाते हैं। आध्यात्मिक उन्नति तो इस अवस्था में संभव ही नहीं होती क्योंकि इच्छाएं आकाश के समान उन्नत हैं। एक पूरी नहीं होती, उससे पहले बहुत सी इच्छाएं और वासनाएं भभक उठती हैं। अतः भारतीय मनीषियों ने दुष्परिणामों को रोकने के लिए बहुत सोच समझकर विवाह का बन्धन स्वीकृत व प्रचलित किया।

प्रारम्भिक काल में तो जैन मान्यता के अनुसार युगलिक प्रणाली थी जिसमें बच्चा व बच्ची का जोड़ा साथ ही जन्म लेता व वयस्क होने पर पति-पत्नी का सम्बन्ध बन जाता। पर वे भी एक जोड़े को ही जन्म देते अतः बहुत-सी समस्याएं जो हमारे सामने हैं उस समय नहीं थीं। तीसरे आरे के अन्त में जब भगवान ऋषभदेव हुए तो शायद सर्व प्रथम एक युगलनी कन्या का साथी (साथ जन्म हुआ) मर गया और उस कन्या का विवाह भगवान ऋषभदेव के साथ नाभिराजा ने कर दिया, साथ ही भगवान ऋषभदेव के साथ जन्मी कन्या का विवाह भी तत्कालीन प्रथा के अनुसार ऋषभदेव से कर दिया गया। इन्द्र आदि ने इस विवाह महोत्सव का आयोजन किया। यह इस अवसरपिणी काल का प्रथम विवाह था। इसके बाद भगवान ऋषभदेव ने साथ जन्मी हुई बच्ची के साथ विवाह करने की प्रथा को बंद कर दिया और अपने पुत्र भरत के साथ जन्मी हुई ब्राह्मी का विवाह बाहुबलि से और बाहुबलि के साथ जन्मी हुई सुन्दरी का विवाह भरत से करने का निश्चय किया

हमारे अभिशाप और आपका मत

श्री सतीशचन्द्र अग्रवाल
केन्द्रीय राज्य वित्त मन्त्री नई दिल्ली

दहेज उन्मूलन के संबंध में विधि-विधान और नियम-निषेध से यदि काम चल जाता तो झंझट ही कहां रह जाता। समस्या जीमनवार, सजनगोठ अथवा देश के नेग चार आदि की इतनी विषम नहीं है, जितनी विषम है सीधे या संकेत से दहेज मांगने की। दहेज का झमेला होता है वधू के अभिभावकों के बीच, परन्तु कुल मिला कर सजा भुगतती है केवल बेचारी लड़की। आये दिन कितनी हत्याएं और आत्म-हत्याएं हमारे देश में इसी दहेज के प्रलोभन में होती रहती हैं।

इसका एक मुख्य कारण यह है कि हम लोगों ने अपनी मूल संस्कृति को भुला दिया है, लोभ का परदा हम सब लोगों की आंखों पर पड़ गया है। हमारी कथनी और करनी में जमीन-आसमान का फर्क आ गया है। हमारी प्राचीन संस्कृति

(पृष्ठ ६ देखें)

पर आगे चलकर ये दोनों बहनें ब्राह्मी और सुन्दरी भगवान ऋषभदेव के पास दीक्षित हो गयीं। दोनों पत्नियों से भगवान ऋषभदेव के एक-एक जोड़ला ही उत्पन्न हुआ था. उसके बाद ९८ पुत्र और हुए पर वे युगलियक नहीं थे। इसलिए भगवान ऋषभदेव को युगला धर्म निवारक कहा जाता है। तब से अनेक सुधार सभी व्यवहारों में होते गये। पिता अपनी वर्षों तक पाली-पोषी कन्या को जब दूसरे गोत्र और घर वाले वर के साथ विवाहित करता है तो वह अपना कर्तव्य समझता है कि भावी जीवन में काम आने वाली वस्तुओं को कन्या को विदा करते समय दे दे। ताकि उसे संकोचवश ससुराल में आवश्यक वस्तुओं को मांगने में असुविधा न हो और सुख पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सके। यह प्रीतिदान की प्रणाली ही आगे चलकर दहेज बन गई जिसे राजस्थान में दत्त-दायजा कहा जाता है। वर्तमान समाज व जीवन में जो प्रथा वरदान के रूप में प्रचलित हुई थी, वह आज अभिशाप बन गई है कोई भी माता या पिता अपनी प्यारी पुत्री को अच्छे से अच्छा घर और वर देखकर सम्बन्ध करना चाहता है और स्वेच्छा से अपनी स्थिति के अनुरूप वर और कन्या तथा साथ ही वर के परिवार वालों को साधारण वस्त्र, आभूषण, आवश्यक सामान व नगद देता ही है। यहाँ तक तो यह बहुत आवश्यक व उचित ही है, पर जब वर या वर के परिवार वालों की मांग अधिक लेने की बढ़ जाती है तब कन्या के पिता के लिए बहुत कठिनाई उपस्थित हो जाती है। अपनी स्थिति व हैसियत से अधिक किसी से उधार लेकर जब खर्च किया जाता है तो उसका दुष्परिणाम कन्या के परिवार वालों को भुगतना पड़ता है। वर या वर के अभिभावकों की मांग व इच्छा पूरी न होने पर वे कन्या को सताते हैं, इससे दोनों परिवारों का सम्बन्ध कटु बनता जाता है और कन्या को बहुत बार आत्म हत्या करने या अत्याचार सहने के लिए बाध्य होना पड़ता है। बहुत सी कन्याओं का तो बड़ी उम्र हो जाने पर भी इसलिए विवाह नहीं हो पाता कि पिता उतना दहेज व विवाह खर्च नहीं जुटा पाता। इसी सामाजिक कुरथा ने अब बहुत विकराल रूप धारण कर लिया है, इसलिए विरोधी वातावरण और निषेधक कानून की आवश्यकता हो उठी है। और वास्तव में इसका कोई न कोई हल करना ही पड़ेगा।

वैसे प्रायः प्रत्येक घर में कुछ लड़के तो कुछ लड़कियाँ अनुपात में थोड़े कम या ज्यादा हों, पर होते ही हैं। अतः लड़कियों के विवाह में देना पड़ता है तो लड़कों के विवाह में आता भी है. अतः दोनों तरफ समान सी बातें हैं। पर आज लड़के का मूल्य बढ़ता जा रहा है। पिता और परिवार वाले उसके विवाह से अधिक से अधिक प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। बड़ी बड़ी मांगें रखते हैं। कुछ व्यक्ति तो अपनी जबान से नहीं कहते, दूसरों की मार्फत तय करते हैं और कुछ मुंहफट व्यक्ति अपनी भारी भरकम मांग को स्वयं मे कहीं भी लड़की वालों से दहेज लेने का विधान नहीं है।

यदि आज देश का प्रत्येक परिवार इस बात के मर्म को समझ ले कि सात भांवरे पड़ते ही या निगाह पड़ते ही वह लड़की वर के परिवार की कुल-वधू हो जाती है. उस परिवार की वंश-वृद्धि तथा साथ ही धार्मिक और सामाजिक कृत्यों का माध्यम बन जाती है. तो फिर लड़की को ससुराल वालों के लोभ का शिकार नहीं होना पड़ेगा। लड़के के परिवार वाले यह नहीं समझते कि वे अपने ही एक अंग को प्रताड़ित कर रहे हैं, नष्ट किये दे रहे हैं और इस प्रकार परम्परा का अभिशाप ले रहे हैं।

जहाँ तक शादी के मौके पर दिखावे का सवाल है, मैं आपसे पूर्ण रूप से सहमत हूँ कि यह दिखावा फिजूलखर्ची है। उसी पैसे को बचा कर जाति और समाज के पिछड़े वर्गों के हित में लगाया जा सकता है। अभी भी देश में शिक्षा का, चिकित्सा का, रोजगार का कितना प्रबल अभाव है। कुछ करने के लिए हमें दूर जाने की जरूरत नहीं होती है. हमारे चारों ओर मानवता, दरि-

(पृष्ठ ७ देखें)

कह देते हैं। पहले तो लड़के के विवाह को उतावल नहीं अभी देर है ऐसा बहाना करके टालते रहते हैं, पर जब बड़ी बोली बोलने वाला अर्थात् जब कोई अधिकाधिक मांग को पूरी करने वाला मिल जाता है तो झट से हां भर देता है। लड़के की पढ़ाई, विदेश यात्रा आदि अनेक तरह के बहानों से मांगें उपस्थित की जाती हैं जिनकी पूर्ति कन्या के पिता के लिए असम्भव व बहुत कठिन हो जाती है। साधारण मिति वाले इससे बड़े दुखी व चिंतित होते हैं।

दहेज एक विकराल समस्या से रूप में मुंह बाए राक्षस की तरह खड़ा है, पर इसका समुचित समाधान अभी तक नहीं हो पाया है। छिटपुट रूप में कहीं कहीं कुछ युवकों व अभिभावकों से ये प्रतिज्ञायें करवायी जाती हैं कि वे दहेज नहीं लेंगे या मांग नहीं करेंगे। पर इससे आंशिक लाभ भले ही हो पर बड़े पैमाने पर समाधान नहीं होता। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के दिल में यह बात इतनी घर कर चुकी है कि लड़के के विवाह में अधिक से अधिक प्राप्ति की आशा रखते हैं। एक दूसरे के अनुकरण में लोग दहेज देने भी खूब लगे हैं। लोगों के पास नया नया पैसा बढ़ता ही जा रहा है और वे अपने ऊपर धन का उपयोग इसी में करना ठीक समझते है, इसीलिए विवाह के खर्च और दहेज दोनों दिनों दिन बढ़ते जा रहे हैं। धनिकों के लिए तो कोई बात नहीं पर मध्यम व साधारण स्थिति वालों के लिए सिर दर्द बढ़ता ही जा रहा है और बहुत सी कन्याएं ३०-३० वर्ष की हो जाने पर भी कुमारी ही बैठी हैं। बहुत बार लड़कियों को उच्च शिक्षा दिलाई जाती है और उसके समान या ऊंचे शिक्षा प्राप्त लड़के नहीं मिल पाते। आखिर ये शिक्षित कन्याएं कहाँ तक निकम्मी घर में बैठी रहें और पिता के घर का खर्च बढ़ाती रहें, अतः या तो स्वयं वर चुनके प्रेम विवाह कर लेती हैं जो ज्यादातर असफल होता है। पर किसी को वे दोष नहीं दे सकतीं। क्योंकि "आप कमाया कामणा किनें दीजे दोष।" कुछ शिक्षित कन्याएं नौकरी करने लगती हैं। कुछ अपने रोजगार से माता-पिता व भाई-बहनों का पोषण कर सहायक बनती हैं। इससे समाज के ढांचे में कभी उलट फेर व अव्यवस्था नजर आती है। आखिर इन सब समस्याओं का समाधान ढूंढना ही पड़ेगा।

एक समाधान यह हो सकता है कि प्रारम्भ से ही इस मान्यता व भावना को कमजोर बना दिया जाय कि लड़की का विवाह करना अनिवार्य है। जिस प्रकार पुरुष अविवाहित रहकर भी सेवा के अनेक क्षेत्रों में अपने को लगा सकता है और इससे आत्म संतोष व यश भी प्राप्त कर सकता है। सदाचारी ब्रह्मचारी का समाज सदा सम्मान करता ही जा रहा है। उसी तरह कन्याओं का भी एक दल ऐसा तैयार हो या किया जाय जो ब्रह्मचारिणी हो। स्वयं आजीविका चलाने में समर्थ हो और सेवा करने में जीवन को खपा दें तथा आत्म साधन में उच्चतम प्रगति करें। उनका जीवन दूसरों के लिए भी आदर्श व प्रेरणादायी हो वे अच्छी शिक्षिका बनें। विद्यालयों और शिक्षा प्रेमी परिवारों

व्रता और अभावों के नीचे कुचली पड़ी है।

मैं आपके प्रयासों की प्रशंसा करता हूँ और अपनी तरफ से यथा संभव सहयोग देने के लिये हमेशा तैयार रहूँगा।

श्री मणिमधुकर
सुप्रसिद्ध लेखक एवं विचारक
कलकत्ता

दहेज एवं सामाजिक कुरीतियों से संबंधित 'सम्मेलन' की टिप्पणी मिली। इसके पीछे एक स्पष्ट चिन्तन और रचनात्मक आग्रह है, यह जानकर सचमुच बड़ी प्रसन्नता हुई। सांस्कृतिक स्तर पर मेरा एक ही सुझाव है कि यदि टिप्पणी के कई संदर्भों को आधुनिक रंगबोध से जोड़ा जाये और उन्हें व्यापक रूप से प्रदर्शित-प्रचारित किया जाये तो संभवतः एक सही और कारगर प्रभाव पड़ेगा।

●

श्री भैरो सिंह शेखावत
मुख्य मंत्री राजस्थान
जयपुर

यह जानकर प्रसन्नता हुई की अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन की समाज सुधार समिति ने दहेज आदि मे फिजुलखर्ची रोकने के लिये नियम बनायें हैं और

(पृष्ठ ८ पर देखें)

में वे लड़के-लड़कियों, बालक-बालिकाओं को पढ़ाने में बहुत सफल सिद्ध हो सकेंगी। इससे वे स्वयं अपने पैरों पर खड़ी हो सकेंगी। पुरुषों व परिवार वालों के आश्रित नहीं होना पड़ेगा। मेरी राय में शिक्षा और संस्कार पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक अच्छे रूप से दे सकती हैं। उन्हें इस योग्य बनाया जाय व उन्हें इस क्षेत्र में आगे बढ़ने का अवसर दिया जाय।

इसी तरह सेवा के क्षेत्र में भी वे महत्वपूर्ण योग दे सकती हैं चिकित्सालय में नर्सें जैसी सेवाएं करती हैं वैसी पुरुष नहीं कर सकते। स्त्रियों और बालकों के रोगों की विशेषज्ञ बनने की उन्हें ट्रेनिंग दी जाय तो वे समाज की बहुत-बड़ी सेवाएं कर सकेंगी। सेवा स्त्रियों के लिए सहज है। मातृ-हृदय कोमल होता है उससे करुणा का स्रोत सहज ही फूटता है। अतः उनकी स्वाभाविक वृत्ति को बल एवं प्रश्रय तथा प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है।

आत्मोन्नति के क्षेत्र में भी हमारी कन्याएं बहुत आगे बढ़ सकती हैं इसका एक जबरदस्त उदाहरण जैन साध्वियां हैं। प्रारम्भिक काल से अबतक धार्मिक भावना व भक्ति भाव पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक रहा है। आज भी साधुओं की अपेक्षा साध्वियों की संख्या दुगनी है कहीं कहीं तो दस गुनी भी हैं। वे अपने आत्म कल्याण के साथ साथ धर्मोपदेश द्वारा काफी परकल्याण भी कर रही हैं। तेरापंथी साध्वियों ने इधर कुछ वर्षों में जो अद्भुत प्रगति की है वैसी अन्य सम्प्रदाय वाले भी करें। साध्वियों को उच्चतम शिक्षा व स्वाध्याय ध्यान की प्रेरणा अधिकाधिक दी जाय। उन्हें आगे बढ़ने का अवसर अधिकाधिक दिया जाय तो मेरी स्पष्ट राय है कि वे साधु समाज से भी आगे बढ़ सकती हैं और अधिक कार्य कर सकती हैं। स्त्री-शक्ति का समुचित विकास अति आवश्यक है।

कहा जाता है कि पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों की काम वासना अधिक गहरी होती है। साथ ही यह भी है कि वे पुरुषों की अपेक्षा उत्तेजित कम होती हैं लज्जा, सहनशीलता, संकोच आदि अनेक, कारणों से अपनी वासनाओं पर अधिक व अच्छी तरह से विजय प्राप्त कर सकती हैं। उन्हें बिगाड़ने वाले प्रायः पुरुष ही होते हैं, अतः स्त्रियों को ऐसी ट्रेनिंग दी जाय कि वे अपनी शारीरिक एवं मानसिक मनोबल का इतना अधिक विकास कर सकें कि वे पुरुष के काम वासना का शिकार न होकर उन पर विजय प्राप्त कर सकें। यदि इस तरह हमारी कन्याओं को ब्रह्मचारिणी, सदाचारिणी, ब्रह्मनिष्ठ बनने का नया मोड़ दिया जाय तो स्वभावतः विवाह करने वाली कन्याओं की संख्या घटेगी और युवकों व अभिभावकों को वह प्राप्त करने में कठिनता होने लगेगी। तब युवकों की तरह कन्याओं का भी मूल्य बढ़ जायगा। जैसे कि कुछ समय पहले तक था मेरी अपनी देखी व सुनी हुई बात है कि लड़के वाले लड़की की माता-पिता से अरज करते थे कि आपकी कन्या हमें देकर हमारी वंश वृद्धि में सहयोग दीजिये। वह स्थिति पुनः लायी जा सकती है। कन्याओं

(शेषांश पृष्ठ २६ पर देखें)

सारे मारवाड़ी समाज से विवाह के अवसर पर इन नियमों के पालन की अपेक्षा की है। मैंने इन नियमों को देखा है। सचमुच में यदि सभी लोग इन नियमों का पालन करें तो दिखावे और आडम्बर में होने वाली फिजूलखर्ची रुक सकती है और दहेज जैसी अपमानजक प्रथा समाप्त हो सकती है। मैं आपके नियमों के साथ अपनी सहमति प्रकट करता हूँ और देश के समस्त नागरिकों और विशेषकर मध्यम वित्तीय स्थिति वाले नागरिकों से यह अपेक्षा करता हूँ कि वे इन नियमों को अवश्य अपनाएगें

मेरा यह भी मानना है कि मारवाड़ी ही नहीं देश के प्रत्येक समाज का इस दिशा में पूर्ण जागरुकता रखकर सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का स्वयं प्रयत्न करना चाहिए। आपने जो कदम उठाया है मैं उसको सराहना करता हूँ और और आशा करता हूँ कि आप अपने उद्देश्य के प्रति अवश्य सफल होगें।

N०—173—1

दादा श्री जिनकुशलसूरि : जीवन दर्शन

अगरचंद नाहटा एवं भँवरलाल नाहटा

प्रगट प्रभावी, कामित कल्पतरु, भक्तवत्सल परम पितामह श्री जिनकुशलसूरिजी जैन शासन के सुप्रसिद्ध महापुरुष थे। जैन समाज का बच्चा-बच्चा उन्हें दादाजी के नाम से पहिचानता है। भारत के कोने-कोने में आपके स्मृति-मन्दिर, मूर्तियां और पादुकाएं प्रतिष्ठित हैं। आपके गुण-वर्णनात्मक सैकड़ों स्तवन-स्तोत्र रचकर अनेक सुकवियों ने भक्ति-कुसुमांजलि समर्पण की है। ऐसे शासन प्रभावक गुरुदेव का पुनीत जीवन आलोकित करने का यह लघु प्रयास किया जा रहा है।

जन्म

मरुस्थल देश के सामियाणा (गढ सिवाना) ग्राम में छाजहड[1] गोत्रीय मं० देवराज के पुत्र मन्त्रिराज श्री जेसल (जेल्हागर) निवास करते थे। उनकी धर्मपत्नी जयतश्री की रत्नगर्भा कुक्षि से सं १३३७ में आपका जन्म हुआ था। आप का जन्म-नाम करमण रखा गया। शुक्ल पक्ष के चन्द्र की भांति अहर्निश बढ़ते हुए स्वजनों के चित्त को आह्लादित करने लगे।

जब आप दस वर्ष के हुए तब खरतरगच्छ के प्रभावक आचार्य श्री जिनप्रबोधसूरिजी के पट्टधर कलिकाल-केवली श्री जिनचन्द्रसूरिजी समियाणा पधारे। गुरुदेव का अमृततुल्य

१ श्रीजिनकुशलसूरिजी और उनके गुरु श्री जिनचन्द्रसूरिजी एवं श्रीजिनपद्मसूरिजी, श्रीजिनभद्रसूरिजी आदि इसी वंश के थे। खरतरगच्छ की वेगड़ शाखा में तो अधिकांश आचार्य इसी वंश के हुए हैं। अब भी छाजहड़ गोत्रवाले खरतरगच्छानुयायी हैं। इस गोत्र की एक ऐतिहासिक प्रशस्ति अहमदाबाद से प्रकाशित "जैन प्रशस्ति संग्रह" में प्रकाशित हुई है। श्री नाहरजी के 'जैन लेख संग्रह' के लेखांक २५०५ में इस गोत्र सम्बन्धी अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री मिलती है।

गृहस्थ अवस्था में आप श्रीजिनकुशलसूरिजी के पितृव्य होते थे। इनके सम्बन्ध में सूरिजी (चरित्रनायक) ने प्राकृतमें 'चतुःसप्ततिका' ग्रन्थ रचा है जिसे इसी ग्रन्थ के चतुर्थ खण्ड में सानुवाद प्रकाशित किया जा रहा है। उसका ऐतिहासिक सार हमारे सम्पादित "ऐतिहासिक जैनकाव्य संग्रह" के सार विभाग पृ० ११ में प्रकाशित हो चुका है। गुर्वावली में इनका चरित्र

173-2

धर्मोपदेश श्रवण कर करमण कुमार संसार से विरक्त हो गये। उन्होंने उसी क्षण अपना समग्र जीवन संयमाराधन में व्यतीत करना निश्चित कर लिया। घर आकर मातेश्वरी जयतश्री को सविनय विज्ञप्ति की "गुरुदेव के सदुपदेश से प्रतिबोध पाकर संयम मार्ग ग्रहण करने की मेरी उत्कट अभिलाषा है। अतः माता जी! कृपा करके मुझे अनुमति प्रदान करें।" लाडले पुत्र के इन वचनों ने माता के हृदय को मार्मिक आघात पहुंचाया। वे कहने लगीं "वत्स! तुम्हारे वचन बड़े प्रिय और मनोहर हैं, पर मेरे एकमात्र तुम ही आधार हो। तुम्हारे बिना मेरा जीवन असार है; फिर तुम तो अभी निरे बालक हो, चारित्र पालन करना तुम्हारे जैसे सुकुमार के लिए अति कठिन है, संयम मार्ग में पद-पद पर अनेकों बिघ्न, परिसह आते हैं। अतएव अभी इस विचार को छोडकर सुख से रहो। तुम से मुझे बड़ी-बड़ी आशाएं हैं। किसी सुलक्षणा कन्या को पुत्रवधू के रूप में देखने का मेरा भव्य मनोरथ पूर्ण करो।"

माता के मोहयुक्त वचनों को श्रवण कर कर्मणकुमार ने अपना दृढ़ निश्चय इन शब्दों में प्रकट कर दिया "इस संसार में कोई किसी का नहीं है, अनेक बार इन कौटुम्बिक सम्बन्धों को प्राप्त कर आत्मोन्नति के स्थान पर संसार-वृद्धि ही की है। अतः अब इन सम्बन्धों से सरा, मैं भव भव में एकान्त हितकारी भागवती प्रव्रज्या को स्वीकार कर आत्म-कल्याण करूंगा। जो समय जा रहा है वह आने का नहीं, आयु प्रति क्षण घट रही है। कृपा कर मुझे शीघ्र अनुमति दीजिये।" पुत्र के निश्चयात्मक वचनों से विवश होकर माता को अनुमति देनी पड़ी।

दीक्षा

शुभ मुहूर्त में सं० १३४७ फाल्गुन शुक्ला ८ के दिन श्री जिनचन्द्रसूरिजी के करकमलों से समारोहपूर्वक आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई। आपका दीक्षा नाम कुशलकीर्ति रखा गया। इस समय देववल्लभ, चारित्रतिलक और रत्नश्री साध्वी की दीक्षा एवं मालारोपण आदि हुए। साथ-साथ चौहान श्री सोमेश्वर महाराज द्वारा किए हुए विस्तृत प्रवेश-महोत्सव के सहित श्री शांतिनाथ स्वामी की स्थापना भी सा० बाहड़, भां० भीमा, भां० जगसिंह, भां० खेतसिंह कारित मन्दिर में हुई।

विद्याध्ययन

उस समय उपाध्याय विवेकसमुद्र[२] वयोवृद्ध गीतार्थ और प्रकाण्ड विद्वान् थे।

बहुत विस्तार से मिलता है। जैसलमेर नरेश कर्णदेव, जेत्रसिंह, सामिगारा के समरसिंह, शीतलदेव आदि आपके भक्त थे। आपने सम्राट कुतुबुद्दीन को अपने सद्गुणों से चमत्कृत किया था। पट्टावलियों में इनका "कलिकाल केवली" विरुद लिखा है।

२ आपने सं० १३०४ मिती वैशाख शुक्ला १४ को श्री जिनेश्वरसूरिजी महाराज के कर-कमलों से दीक्षा ग्रहण की थी। सं० १३२३ में वि० [illegible] जिनेश्वरसूरिजी ने वाचनाचार्य-पद प्रदान किया। सं० १३४२ मिती वैशाख शुक्ला १० को

चरित्रनायक के गुरु कलिकालकेवली श्रीजिनचन्द्रसूरिजी, राजेन्द्रचन्द्रसूरिजी[३] दिवाकराचार्य[४] राजशेषराचार्य[५] वा० राजदर्शनगणि,[६] वा० सर्वराजगणि[७] आदि अनेक सुप्रसिद्ध विद्वानों ने आप ही के पास तीन बार हेमव्याकरण बृहद्वृत्ति, ३६००० श्लोक परिमाण वाले श्री न्यायमहातर्कलक्षण, साहित्य, अलंकार, ज्योतिष और स्वपरदर्शनादि के ग्रन्थ पढ़े थे, हमारे चरित्रनायक कुशलकीर्तिजी का अध्ययन भी आप ही के पास हुआ। इस बात को आपने स्वयं 'चैत्यवन्दन-कुलकवृत्ति' की अन्त्य प्रशस्ति में इन शब्दों में लिखा है—

तन्मौक्तिक स्तवक सेव्य पदोऽनुबेल
मस्ताघ संवर धरः कुपथ प्रमाथी
विद्यागुरुर्मम विवेकसमुद्र नामोपा-
ध्याय इद्धतर रत्ननिधिर्बभूव ॥११॥

जालोर के श्री महावीर चैत्य में श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने आपश्री को उपाध्याय पद से अलंकृत किया। सं० १३७९ मिती ज्येष्ठ कृष्ण १४ को पाटण में अनशन करके मिती ज्येष्ठ शुक्ला २ को स्वर्गवासी हुए। जिसका वर्णन दूसरे प्रकरण में किया गया है। इनके रचित सम्यक्त्व पर १ नरवर्म चरित्र की १३८ पत्र की प्राचीन प्रति श्री विजयधर्मसूरि ज्ञानमन्दिर, आगरे में विद्यमान है; २ पुण्यसार कथानक सं० १३३४ जैसलमेर में रचित उपलब्ध है।

३ श्रीजिनचन्द्रसूरि ने सं० १३४७ ज्येष्ठ कृष्णा ७ को भीमपल्ली में आपको दीक्षा दी थी। उपाध्याय श्री विवेकसमुद्रजी के पास आपने व्याकरण तर्क, साहित्य, अलङ्कार, ज्योतिष व स्व-पर सिद्धान्तादि का अध्ययन किया था। सं० १३७३ में जब श्री जिनचन्द्रसूरिजी देवराजपुर थे, वहाँ से सेठ वीसल और मोहणसिंह को भेजकर पाटण से वहां बुलाया तब उपाध्यायजी ने पुण्यकीर्ति को साथ देकर आपके पास भेजे। सूरिजी ने उन्हें मिती मार्गशीर्ष कृ० ९ को आचार्यपद दिया।

४ इन्हें सं १३३१ फाल्गुन शुक्ला ५ को श्रीजिनप्रबोधसूरिजी ने जालोर में दीक्षा दी, इनका दीक्षा-नाम स्थिरकीर्ति रखा। सं० १३४४ मार्गशीर्ष शुक्ला १० को जालोर के श्रीमहावीरस्वामी के मन्दिर में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने आचार्य-पद देकर इन्हें दिवाकराचार्य नाम से प्रसिद्ध किया। सं० १३६० आषाढ़ कृ० ४ को इन्होंने चतुर्विध संघ सह आबू यात्रा की, जिसका लुणगवसही में लेख है।

५ इन्होंने सं० १३१४ में चैत्र शुक्ला १४ को श्री जिनेश्वरसूरि से चारित्र ग्रहण किया। सं० १३४१ वैशाख शु० ३ को श्रीजिनप्रबोधसूरिजी ने जालोर में वाचक-पद दिया। सं० १३६४ वैशाख कृ० १३ को जालोर में श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने आचार्यपद से विभूषित किया। इन्होंने राजगृह आदि अनेक तीर्थों की यात्रा की थी।

६ ये पालनपुर में सं० १३१५ आषाढ़ शु० १० को श्रीजिनेश्वरसूरिजी के कर-कमलों से दीक्षित हुए। सं० १३४६ वैशाख कृ० १ को जालोर में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने वाचनाचार्यपद से अलंकृत किया।

७ सं० १३२२ माघ शुक्ला १४ को विक्रमपुर में इनकी दीक्षा हुई। सं० १३४२ वैशाख शु० १० को जालोर में श्री महावीर भगवान् के मन्दिर में श्री जिनकुशलसूरिजी ने वाचकपद दिया। इन्होंने गणधरसार्द्धशतक लघुवृत्ति की रचना की।

173-3

वाचनाचार्य पद

सं० १३७५ में फलोदी[८] पार्श्वनाथजी की द्वितीय बार यात्रा करके श्री जिनचन्द्र-सूरिजी नागपुर (नागौर) पधारे। मिती माघ शुक्ला १२ को मन्त्रीदलीय[९] ठक्कुर विजयसिंह ठ० सेढू सा० रूदा आदि योगिनीपुर (दिल्ली) के संघ प्रमुख श्रावक और डालामऊ के मन्त्रीदलीय ठ० अचल आदि समुदाय, कन्यानयन आसिका, नरभट आदि बहुत से स्थानों के रहने वाले समस्त वागड़ देश के संघ, मं० मूधराज आदि कोशवाणा के समुदाय, एवं समस्त सपादलक्ष देश का समुदाय, जाबालिपुर के साह सुभट आदि, शम्यानयन आदि मारवाड़ समुदाय के एकत्र होने पर एक विराट् महोत्सव प्रारम्भ हुआ। स्थान-स्थान पर अन्नसत्र खोले गए, जिन-मन्दिरों में नृत्य, पूजन, स्वधर्मीवात्सल्यादि हुए। बहुतों ने व्रतग्रहण, मालारोपण आदि के लिए नन्दी-महोत्सव किया उस समय सोमचन्द्र साधु एवं शीलसमृद्धि, दुर्लभसमृद्धि, भुवनसमृद्धि साध्वी को दीक्षा, दी गई। पं० जगच्चन्द्र[१०] को वाचनाचार्य-पद दिया गया। धर्ममाला[११] व पुन्यसुन्दरी[१२] गणिनी को प्रवर्त्तिनी-पद दिया गया।

हमारे चरित्रनायक कुशलकीर्तिजी इस समय स्वपर समस्त शास्त्रों के पारङ्गत विद्वान् हो चुके थे। न्याय, व्याकरणादि में आपकी असाधारण गति थी। अतएव सर्वथा योग्य जानकर इसी उत्सव में श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने इन्हें वाचनाचार्य-पद से विभूषित किया।

इस महोत्सव के अनन्तर कलिकालकेवली श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने ठक्कुर विजयसिंह, ठ० सेढू, ठ० अचलसिंह आदि बृहत् संघ के साथ फलोदी पधार कर तृतीय बार श्री पार्श्वनाथ भगवान् की यात्रा की। संघ के पधारने से वहां के भण्डार में हजारों रुपयों की आमदनी हुई। इसके पश्चात् सं० १३७५ वैशाख कृ० ८ को पूज्यश्री नागौर पधारे। महत्तियाण ठक्कुर अचलसिंह ने सम्राट् कुतुबुद्दीन से निर्विरोध तीर्थ यात्रा का फरमान प्राप्त कर हस्तिनापुर और मथुरा के लिए एक विराट् संघ निकाला। हस्तिनापुर की सकुशल यात्रा करने के पश्चात् सूरि महाराज कुतुबुद्दीन सम्राट् को चमत्कृत कर खंडासराय ठहरे। वहां से मथुरा की यात्रा कर पुनः दिल्ली पधारे और खंडासराय में चातुर्मास किया।

---

८ युगप्रधानाचार्य गुर्वावली के अनुसार यहाँ के विधिचैत्य में सं० १२३४ में श्री जिनपतिसूरिजी ने श्री पार्श्वनाथ प्रभु की स्थापना की थी।

९ इस जाति के सम्बन्ध में देखें हमारा "महत्तियाण जाति" लेख प्र० ओसवाल नवयुवक, वर्ष ७, अंक ६।

१० इनको सं० १३४० ज्येष्ठ कृष्णा ४ को जालोर में श्रीजिनप्रबोधसूरिजी ने दीक्षा दी थी।

११ सं० १३३३ में ज्येष्ठ कृष्णा ७ के दिन शत्रुञ्जय में श्रीजिनप्रबोधसूरिजी ने इन्हें दीक्षा दी।

१२ सं० १३४१ ज्येष्ठ कृ० ४ को श्रीजिनप्रबोधसूरिजी ने आपश्री को जैसलमेर में दीक्षा दी।

दक्षिण-भारत के जैनमंदिर व शास्त्रसंग्रह

(ले०—श्री अगरचन्द नाहटा)

दक्षिण-भारत में जैनधर्म का संबंध बहुत प्राचीन एवं घनिष्ठ है। कई शताब्दियों तक तो यहाँ जैनधर्म का प्रभाव बहुत ही व्यापक रहा। यहाँ के साहित्यनिर्माण में जैन विद्वानों का बहुत ही उल्लेखनीय हाथ रहा है। अतः यहाँ का जैन इतिहास बहुत ही गौरवमय है। यहाँ के अनेक नृपति जैनधर्म के अनुयायी थे और जैनाचार्यों का प्रचार-कार्य भी खूब सफल रहा। अतः जैनधर्म भी खूब फला फूला, पर प्रकृति का नियम है—सदा एकसा समय किसी का नहीं रहता, चढ़ती के साथ पड़ती लगी हुई है। एक समय ऐसा आया जब कि शैव, लिंगायत आदि-धर्मों का प्रचार बढ़ा, और उन्होंने जैनों पर बहुत ही अत्याचार किया और करवाया। इसलिये यद्यपि कई शताब्दियों से यहाँ जैनों का प्रभाव कम होता गया, फिर भी जहाँ इतने दीर्घकाल तक अत्यधिक प्रभाव रहा हो वहाँ प्राचीन अवशेषों की अधिकता मिलेगी ही। आज यहाँ के स्थानीय जैनों की आर्थिक स्थिति उतनी सबल नहीं फिर भी उनकी धार्मिक भावना बहुत ही सुदृढ़ है। उत्तर भारत के जैन जो उधर व्यापार के लिये गाँव गाँव में फैले हुए हैं वे श्वेतांबर हैं और उनका यहाँ के मूल निवासी दि० जैनों के साथ जैसा चाहिये आत्मीय संबंध नहीं है। उत्तर भारत के दि० जैन तो तीर्थयात्रा आदि के लिये ही उधर जाते हैं अतः जितना घनिष्ठ परिचय यहाँ बंधुओं के साथ होना चाहिये नहीं कर पाते, यहाँ की वास्तविक स्थिति का पता भी उन्हें नहीं लगता। यहाँ पर जो कुछ दिगंबर जैन विद्वान हैं उन्होंने मेरे देखा कोई ठोस कार्य नहीं किया जिससे कि यहाँ के जैनों, जैनमंदिरों और शास्त्रभंडारों की सही स्थिति का ज्ञान हम लोगों को हो सके। इस कमी की पूर्ति उन्हें शीघ्र ही करनी चाहिये। मैं पं० भुजबलिजी शास्त्री, श्रीपालजी आदि से निवेदन करूँगा कि वे दक्षिण भारत में जहाँ जहाँ भी जैन निवास करते हैं, जैन शास्त्रभंडार हैं उनकी पूरी तरह छानबीन कर जानकारी प्रकाश में लायें, उत्तर भारत के धनी दिगंबर भाइयों और संस्थाओं से भी अनुरोध करूँगा कि वे इस कार्य को परमावश्यक समझकर भुजबलिजी, श्रीपालजी आदि को विद्वान गाइड कार्य कर सकने की उन्हें सभी प्रकार की सहायता देकर इस कार्य को अवश्य ही करना है।

अढ़ाई वर्ष हुये बीकानेर के ही एक व्यवसायी परिवार जिनका नाम प्रसिद्ध है, उनके एक लड़के से मेरी पुत्री का वैवाहिक संबंध हो गया तो मुझे अपनी लड़की को लाने के लिये दो बार दक्षिण भारत की यात्रा करनी पड़ी। इससे पूर्व कई बार इच्छा होते हुए भी, मैं उधर जा न सका था पर भगवान बाहुबली आदि के दर्शन की अभिलाषा बनी रहती थी इसलिये गत वर्ष फाल्गुन मास में मैं जब पहली बार उधर गया तो दक्षिण भारत के दर्शनीय स्थानों, इतिहासिक अंतः संस्कारों तथा जैन तीर्थों व मंदिरों को देख आने का निश्चय किया। महीनों में २४-२६ दिन एक हैदराबाद, मद्रास, बंगलौर, मैसूर के प्रदेशों में भ्रमण किया। उसका सुनिश्चित और अनुभव गत वर्ष का ही नोट किया हुआ पढ़ाई पर अन्य कामों में व्यस्त रहने से उसे लिख नहीं पाया। इसबार जैन कला प्रदर्शनी व विवाह के प्रसंग से दिल्ली २० दिन ठहरना हुआ तो यहाँ से अपनी पुत्री को लाने के लिये फिर मद्रास की ओर आना होगया। यद्यपि इस बार केवल ४-६ दिन ही उधर रहा पर समयाभाव से यहाँ नहीं आ सका था उन्हें कुछ स्थानों में इस बार पहुँचा। यद्यपि अभी श्री जैनकांयी आगा-निरिजी कुछ और महत्वपूर्ण स्थानों में आना बाकी है। अभी दो बार की यात्रा में दक्षिण भारत के दिगंबर जैनमंदिरों और शास्त्रसंग्रहालयों के जैसे दर्शन किये और यहाँ के कुछ जैनों से मिला। उनका संक्षिप्त वृत्तांत, इसके अतिरिक्त मुझे जो विचार सूझे उन्हें, यहाँ प्रकाशित कर रहा हूँ।

मद्रास से करीब १२० मील दूर कडलूर नामक एक पुराना शहर है। यहाँ मेरे संबंधी श्री का व्यापार भी है। गत बार मैंने जब पूछा कि यहाँ कोई जैनमंदिर व शास्त्रसंग्रह है तो पता लगा कि यहाँ दिगंबर जैनों की कुछ दुकानें हैं, यद्यपि उनकी आर्थिक स्थिति सन्तोषप्रद है। पर उनके मोहल्ले में एक जैन मंदिर है तो मैं वहाँ जरूर पहुँचा। मंदिर जी के दर्शन किये और उत्तर भारत में जो यहाँ के स्थानों में कुछ प्रचलित है उनकी उससे पहिले जानकारी यहीं मिली। श्वेतांबर जैन मंदिरों की भाँति दिगंबर जैन मंदिरों में भी बड़े बड़े शिलालेख दक्षिण भारत में ही अधिक मिलते हैं। इनके शिलालेखों की लिपि कन्नड़ आदि होने से मैं उन्हें पढ़ तो नहीं पाया पर जब प्रस्तर खंडों पर लंबे लंबे लेख हैं तो उनमें इतिहास की भी बहुमूल्य सामग्री मिलेगी, निश्चित है। मूर्तियों के परिकर भी उत्तर भारत से भिन्न प्रकार के हैं। उधर देवियों की मूर्तियों का प्रचार भी अधिक रहा है और अष्ट प्रातिहार्य भी पंचतीर्थ के पनाये हुए (अलग अलग) सामने रखे रहते हैं जो उत्तर भारत में नहीं देखे जाते। श्वेतांबर आगमोक्त अष्ट प्रातिहार्यों से भी कुछ भिन्न भी हैं। मंदिरों के कलात्मक अंग भी दूसरे प्रकार के हैं। अन्य मूर्तियों व मन्दिरों की शैलियों और पूजन की विधियों में भी अंतर देखने को मिला। मेरे उस मंदिर में जाने पर आसपास के कुछ जैन भाई जिन्हें यहाँ नलियार कहते हैं, इकट्ठे हुए और शास्त्रभंडार का पूछने पर उन्होंने पास ही एक जैन महिला मुंदेया के घर में बतलाया। मैं वहाँ गया तो उस गली में श्वेतांबर जैन समाज में जिसे घरदेरासर कहते हैं देखा। उस गृहमंदिर में प्रभु मूर्तियों का दर्शनकर पास ही एक अलमारी में रखी हुई शास्त्रीय प्रतियों को देखा। उनकी सूची बनी हुई नहीं थी। कुछ ग्रंथों के नाम मैंने उस दिन से पहले, और किसी ग्रंथ की एक से अधिक प्रति हो तो वैसी एक दो प्रति हमारे संग्रहालय के लिये देने का अनुरोध किया। पर उसने स्वीकार नहीं किया। कुछ प्रतियाँ ऐसी ही बाहर रखी हुई थीं। मैंने कहा कि उनकी सुरक्षा ठीक से की जाय व सूची अवश्य बनाई जाय पर उस बहिन का उत्साह नहीं दिखाई दिया। इस बार आने पर मैं फिर वहाँ पहुँचा पर मंदिर बन्द था व उस बहिन का मकान भी बंद था। पूछने पर मालूम हुआ कि चिदंबरम् में जो उत्सव हो रहा है उसी में भाग लेने को वे गये हैं। उन शास्त्रों की सूची अवश्य ही प्रकाश में आनी चाहिये। और शिलालेखों की नकलें भी।

यहाँ से हम अपनी यात्रा को बढ़ाते हुए और भगवान कटपुरी के दर्शन कर मैं जो [illegible] विभोर होगया। दोनों पहाड़ों पर कई बहुत ही बड़ी और सुन्दर मूर्तियाँ हैं। और नीचे गाँवों में भी सुन्दर जिनालय व कीर्तिस्तंभ हैं, जिनमें मान स्तंभ बहुत ही सुन्दर हैं। [illegible] में मूर्तियाँ काफी सुन्दर और मंदिर का शिल्प स्थापत्य व कोरणी दर्शनीय है। जिस मंदिर में भट्टारक जी व शास्त्रभंडार है उसके बाहर कुछ प्राचीन चित्र सुन्दर हैं। भट्टारकजी दिखे नहीं जाने से अतः थोड़े शांति की से बातचीत कर यहाँ प्रसन्नता हुई। एक कमरे में जो शास्त्र-भंडार और तत्सादि का बहुमूल्य मूर्तियाँ हैं उनको देखने के लिये देना पड़ता है। उचित नहीं प्रतीत हुआ। यहाँ के शास्त्रभंडार में जो दर्शनीय प्रतियाँ हैं उनकी जाँच के शीर्षक में प्रकाशित की जाना चाहिये। मैंने [illegible] प्रति [illegible] की है कुछ [illegible] हुआ कि [illegible] से पहिले की [illegible] नहीं है। इस भंडार की सूची प्रकाशित में जो [illegible] है। इसलिये विशेष पुरुषार्थ न कर सका। यहाँ से हम श्रीरंगम होते हुए मैसूर पहुँचे। उत्तरप्रदेश के अन्य दिगंबर जैन भी साथ थे। उनके साथ बातचीत होती रही और उनके साथ ही दिगंबर धर्मशाला में ठहर गये। उनमें भी उत्तर गली में दि० मंदिर का दर्शन किये ठहरने के लिये कोठरी मांगी गई पर टालमटूल ही की गई। अब दूसरे दिन श्वेतांबर जैन धर्मशाला में जाना पड़ा। यहाँ से बहुत से यात्री मूडबद्री जा रहे थे। पर समय अधिक लगने के कारण मैं वहाँ नहीं जा सका। यद्यपि भुजबलीजी भी वहाँ हैं अतः उनसे मिलने की इच्छा थी।

उधर से लौटकर जब मैं सम्मेदशिखर, मधुरा, श्री रंगम आदि के दिगंबर मंदिरों को देखने को गया तो उन्हें भी उदास। पहले वहाँ के राजकीय म्यूजियम व विशाल लाइब्रेरी को देखा। म्यूजियम में कुछ जैन मूर्तियाँ भी थी। लाइब्रेरी में हस्तलिखित शायद ३०-४० हजार प्रतियाँ हैं अतः यहाँ मेरे आकर्षण का मुख्य केन्द्र रही। मैंने उस लाइब्रेरियन से कुछ बातें पूछी। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से मुझे सारा संग्रह दिखाया। यहाँ तात्पत्रीय प्रतियों का बहुत बड़ा और अच्छा संग्रह है और उनमें का ग्रंथ भी बतलाये। पर मैं उस लिपि से अपरिचित होने से लाभ न उठा सका। इसीलिये

की विशाल दस्तलिखित ग्रन्थ लायब्रेरी आदि को देखने व पूछताछ करने पर विदित हुआ कि इस प्रांत की जितनी भी प्राचीन प्रतियों के संग्रह की उपयोगी लाइब्रेरियां हैं उन सभी में जैन ग्रन्थ भी काफी हैं। उनका विवरण सहज ही में प्राप्त किया जा सकता है। जो जैन समाज के लिये बहुत ही आवश्यक और महत्वपूर्ण है। स्थानीय जैन विद्वानों को उन संग्रहालयों में जितने भी जैन ग्रन्थ हैं उनका विवरण संक्षेप रूप प्रकाश में लाना चाहिये। इससे दक्षिण भारत के अनेकों अज्ञात जैन ग्रन्थों की जानकारी बढ़ेगी। मध्य समय कंजीर के जैनमंदिर का भी दर्शन करने गया, यहाँ भी दिगंबर जैनों की ठीक बस्ती है। शास्त्रभंडार का पूछने पर वहां के भाई एक दूसरे मकान में लेगये जहाँ पर मंदिर के साथ दो अलमारियों में शास्त्रग्रन्थों की प्रतियां भरी हुई थीं। उनकी भी शायद सूची नहीं है। जो समाज जाकर प्रकाशित करनी चाहिये। इसी तरह अन्य अनेक स्थानों में भी शास्त्र-संग्रह हैं, जैनसंस्थायें में महत्व के विद्यालय हैं उनका विवरण प्रकाश में आना चाहिये।

इस बार की यात्रा में मैं हिंडोन-पनम् गया। यहां दिगंबर जैन भाईयों के घर हैं। एक धर्मशाला में मंदिर भी है जिसमें एक प्राचीन पाषाण प्रतिमा है जो यहीं पाहर से लाई गई है। शास्त्रभंडार का पूछने पर वहां जैन सोसाइटी की ओर से विद्यार्थियों को जैनधर्म, संस्कृत पढ़ाने की व्यवस्था है जानकर खुशी हुई। यहां से हम एक प्राचीन किले को देखने को गये और लौटते समय एक पहाड़ पर चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियों को देखने गये, इस समय उधर बर्फ होने से वहां तक पहुंचने के लिये काला पानी से भरा हुआ था, पूछा तो विदित हुआ कि यहां मगर है। अतः लम्बे चक्कर से खेतों और पगडंडियों को लांघते हुए पहाड़ पर चढ़ने, चढ़ते ही पहिले सामने एक पर्वतपीठ दिखाई दिया, जिस पर २ मंगलमूर्ति मूर्ति खुदी हुई है उस पहाड़ के दो टुकड़े हो गये हैं इसलिए आगे सामने आगे बढ़ कर ही में पड़ा था उस पर रने पर पहाड़ का दिया जिस पर र्थियां १२-१२ कुदी हुई हैं।

दर्शन करके आनन्द हुआ, मोजमादि का टिफिनरूप साथ था और मेरे साथ २ अन्य स्थानिक भी, सभी ने मिलकर वहीं भोजन किया। पानी नीचे के उस भरे हुए हौद से मानेदर्शक व्यक्ति से मंगवा लिया।

वहां से लौटकर बस द्वारा थोनामूर के लिए रवाना हुए। बस जहां खड़ी रहती है वहां से करीब २ मील पैदल चलना पड़ा। बीच में २ लंबाई नदी का नाला आया, उसमें पानी इतना गहरा न था। अतः जोड़ी पार करके चले गये। गांव में पहुंचने पर विशाल मन्दिर दिखाई दिया। यहां इतने बड़े मन्दिर की कल्पना नहीं थी, यह जैन मन्दिर ३२ वीं शताब्दी का बतलाया गया। आसों कमरों के साथ से इसका जीर्णोद्धार गत कुछ वर्षों पूर्व ही हुआ है। इतना बड़ा जैन मन्दिर इस प्रांत में मुझे देखने को नहीं मिला। उसके पीछे की ओर भी एक पुराना जैन मन्दिर है, यहां सब पर यह चन्द हो चुका था। बड़े मंदिर के दाहिनी ओर एक विशाल धर्मशाला या मठ है, जहां दिगंबर भट्टारक जी विराज रहे थे। श्रीमान से वे महाराष्ट्र के हैं और हिन्दी में अच्छा तथा वार्तालाप कर सकते हैं, इसलिए कई बातें उनसे पूछीं, वे कोल्हापुर के हैं। जब यहां के इतिहास का मैंने जिक्र किया तो बहुत खुशी हुई। पुस्तक भंडार दिखाने को कहा तो आगे एक व्यक्ति के साथ मुझे भेजा गया। वहां एक कमरे में ३ अलमारियां ताड़पत्रीय प्रतियों से भरी हुई थीं, सूची का पूछने पर वहां की लिपि में बनाई हुई सूची का एक कोपी मुझे दिखाई, जिसमें एक सौ बावन १५२ प्रतियों की सूची थी। मुझे अलमारियों में प्रतियां ज्यादा मालूम पड़ीं तो पूछने पर कहा कि नीचे भी तीन-तीन हौदा प्रतियों हैं उनकी सूची इसमें दर्ज नहीं है। वहां से लौटकर आकर मैंने पूछा कि इस प्रांत में दिगम्बर जैन मन्दिर कहां-कहां हैं तो उन्होंने स्थानों स्थानों में मन्दिर व तीर्थों की बातें बतलाईं। उन स्थानों के नाम मैंने लाकर चाहे तो एक स्थानीय व्यक्ति को लिखाने के लिए कहा गया, उसने मुझे ३४ नाम लिखाये। इतने में एक पुलिस का अधिकारी वहां आ उपस्थित हुआ। गांव वालों में आज भी उसका बड़ा भय और रोब जमा हुआ है। इसलिए मुझे सूची लिखानेवाला व्यक्ति उसे अधूरा छोड़ आगत व्यक्ति के सामने चला गया। हमें भी अधिक ठहरने का समय नहीं था, क्योंकि शाम के भोजन के पहिले वापिस दिंडीवनम् पहुंचना था। अतः वह सूची अधूरी ही रही। इस के स्थानों के नाम मित्र प्रचार के हैं और नाम अपरिचित होने एवं अनिःस्थायित्व में भी कुछ फरक रहता है इसलिए मेरे लिखे हुए नाम भी शायद शुद्ध नहीं हैं, फिर भी यहां जैन मन्दिर व जैन बस्ती कितने अधिक स्थानों में है यह बतलाने के लिए जो शुद्ध-शुद्ध नाम मैंने नोट किये, नीचे दिये जा रहे हैं—

१. मिलाहर, २. पोरडक, ३. आमूर, ४. अरणकोडी, ५. वेरनामोर, ६. अतिमाकम, ७. नेमेली, ८. वेलीमेडोगे, ९. मिलार, १०. गुडुवूर, ११. कारकोटे, १२. आई कुरकोटे, १३. कादनेवाडी, १४. परकोचिल, १५. देवूर, १६. तिरुतूर, १७. मेजपट्टे, १८. विल्लुपुरम्, १९. अंबमबोडी, २०. इसाकोमूतूल, २१. सीलड अरनाकर, २२. पलमनेर २३. मेलमलयनूर २४. सायनूर, २५. बुरगाडी, २६. कनलम, २७. इरण मंगलम, २८. वेरीला, २९. मनमोडी, ३०. नोरुमलाडी, ३१. मनूर, ३२. सुमलय, ३३. मलकमुडी (मेलोरमलोकाना) तेंडीवनम।

भट्टारकजी ने हमें कहा कि कल दस्सों तक यहां बड़ा उत्सव हो रहा है बहुत से स्थानों के भाई आयेंगे, आप भी ठहरिये, पर हमारे पास समय न था।

मलवार मद्रास में श्री ऋषभदास जैन के यहां दिगंबर समाज समय भोजन ही था, जिसे मैं। अतः यहां बहुत से लोगों के घरों में हाथ-लिखित प्रतियां पड़ी हैं और सस्ते मूल्य में ही मिल सकती हैं कहा था, तो मैंने अपने संग्रहालय के लिये कुछ खरीदने का निवेदन किया था और उधर के सभी जैन मन्दिरों व बस्तियों की सूची लिख देने का अनुरोध भी किया था, पर इसबार वे नहीं मिले। ऋषभदास जैन निकुंज के उस समय में सम्मिलित होने गये थे जो अपने समय में मेरे साथ हो गये। मलवार मद्रास में मैं एक दिन भाई के घर गया था, वहां एकत्रित शास्त्रों से मुख्यतः के सम्बन्ध में बातचीत हुई थी, वहां के कुछ जैन विद्वान् पं० चक्रवर्ती से भी मिला था। जिन जैन विद्वानों ने समाज का कर्तव्य है कि वहां के जैनों से संपर्क स्थापित कर पूरी जानकारी प्राप्त में लायें। दक्षिण के मुख्य निवासी जैन भाइयों को हम उपेक्षा न करें, उनसे आत्मीय सम्बन्ध बढ़ाकर सभी लाभ उठायें।

भगवान ऋषभदेव का निर्वाण-उत्सव

माघ कृष्णा १४ तारीख २६ जनवरी ४७ को आ रहा है।

इस अवसर पर जैन समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री की ओज लेखनी द्वारा लिखी गई :—

भगवान ऋषभदेव

नामक पुस्तक की हजारों प्रतियां जैन और अजैन-जनता में अपनी ओर से वितरित कीजिये। इसमें भगवान् ऋषभदेव की पवित्र जीवन झांकी, हिन्दू शास्त्रों में ऋषभदेव का उल्लेख और जैनधर्म की प्राचीनता तर्कपूर्ण किन्तु सरल भाषा में लिखी गई है। मूल्य २)

आज ही आर्डर दीजिये। प्रचारार्थ वितरित करनेवाली को विशेष रियायत।

मिलने का पता :—

भा० दि० जैन संघ-चौरासी, मथुरा।

भारत में हलचल

मचा देने वाली ८४ पृष्ठ की रहस्यमय पुस्तक "जीवन मुक्त" एक कार्ड पर १४ भिन्न—भिन्न स्थानों के सज्जनों के पूरे पते लिख कर मुफ्त मंगायें। फिर उसे लगायें। जल्दी करें।

इंडियन स्टोर्स, (४२)
'अलाबरी' ई०पी०

सफेद दाग ऐसे लिखा जाता है कि यह कहां से. इसका पता भी नहीं लगता। दवा का मूल्य ३) रुपया। विस्तृत पत्र मुफ्त मंगावें। नकलों से सावधान रहें।

वैद्य बी. आर. पोरवाल, आयुर्वेद भवन, (मै०), मु.पो. मंगरौल, जि. अलीगढ़

(176) श्रमण भारती — ग० पि० 1

N-176-1

दादा श्री जिनदत्तसूरिजी के ग्रंथों का प्रकाशन हो

— ले० श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर

जैन-धर्म के तीर्थंकरों में भ० महावीर ने केवलज्ञान होने के बाद करीब तीस (३०) वर्ष तक धर्म-प्रचार किया। उनके धर्म-प्रचार का क्षेत्र बंगाल बिहार तक सीमित था। एक बार सिन्धु-सौवीर की लम्बी यात्रा वहाँ के राजा उदयन को प्रतिबोध देने को की थी। बाकी लम्बा विहार कम हुआ। आगे चलकर उनके धर्म-प्रचार को अधिक व्यापक और विस्तार बनाने वाले दीर्घदर्शी महाज्ञानी संयमी परवर्ती जैनाचार्य ही थे। जिनके महान श्रम और पुण्य प्रभाव से जैन धर्म भारत के कोने-कोने में फैल गया। भारत से बाहर भी कालक आचार्य आदि गये थे। महान् सम्प्रति राजा ने भी विदेशों में जैन धर्म-प्रचार का विशेष प्रयत्न किया था।

ढाई-हजार वर्षों में जैन धर्म प्रचारकों को समय-समय पर काफी कष्ट उठाने पड़े, विरोधियों के संघर्ष सहने पड़े। फिर भी जैनाचार्यों ने बड़ी सूझ-बूझ से बड़े संकटों से जैन धर्म को उबारा और जन-जन तक प्रचारित करने का भरसक प्रयत्न किया। उन शासन-प्रभावक जैनाचार्यों और मुनियों के सम्बन्ध में प्रत्येक जैन को आवश्यक जानकारी होनी ही चाहिये, पर हमारे में हजारों ग्रन्थ प्रकाशित हो जाने पर भी स्वाध्याय की प्रवृत्ति नहीं होने से बड़े-बड़े आचार्यों के सम्बन्ध में भी हमें आवश्यक जानकारी नहीं है।

श्वेताम्बर समाज में भी 'दादा जी' के नाम से जो चार आचार्य बहुत प्रसिद्ध हैं, एवं जिनकी दादावाड़ियाँ भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक प्रसिद्ध हैं और पूजी जाती हैं, जिनकी मूर्तियाँ और चरण-पादुकाएँ, सैकड़ों मन्दिरों आदि में भी स्थापित हैं, उन दादा गुरुओं को मानने वाले भी उनकी जीवनी के सम्बन्ध में बहुत ही कम जानते हैं। केवल वे एक चमत्कारी महापुरुष थे, उनकी पूजा भक्ति, ध्यान, जप आदि से कष्टों का निवारण होता है-और मनोवांछित प्राप्त होता है, इसलिए जैन जैनेतर उन दादा-गुरुओं का दर्शन, वंदन, स्तवन, गुण-गान आदि करते हैं। उन चार दादा-गुरुओं में सबसे पहले हैं—दादा जिनदत्तसूरि जो 'बड़े दादा' के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरे हैं उनके शिष्य मणिधारी जिनचन्द्र सूरि (दिल्ली), तीसरे हैं - प्रकट-प्रभावी श्री जिनकुशलसूरि और चौथे युग अकबर प्रतिबोधक जिनचन्द्र सूरिजी इनमें से पहले और बड़े दादा श्री जिनदत्तसूरि हैं।

श्री जिनदत्तसूरिजी ने अजमेर, चित्तौड़, नागौर, त्रिभुवनगिरि, विक्रमपुर, रुद्रपली आदि मरू-धागड़ देश में विहार करके चैत्यवास का जोरों से खण्डन किया और लक्षाधिक जैनेतरों को जैनधर्म का प्रतिबोध दिया। आपके प्रतिबोधित जैनों की संख्या एक लाख तीस हजार बतायी जाती है।

आपकी वाणी में जादू सा प्रभाव था। अन्यथा लाखों व्यक्तियों को मांस-मदिरा आदि दुर्व्यसनों से मुक्त करा देना इतनी बड़ी संख्या में साधु-साध्वियों को दीक्षित करना, चौंसठ योगिनियों ५२ वीरों को भक्त बना लेना, 'मारि' रोग और व्यन्तर—उपद्रव आदि को दूर कर देना, कोई मामूली बात नहीं है। आपका योग तप और आत्मबल बहुत ही जबरदस्त था जिसका प्रभाव बड़े-बड़े राजाओं, मन्त्रियों और विरोधी विद्या सम्पन्न बड़े-बड़े चैत्यवासी आचार्यों और विद्वानों आदि पर पड़ा। प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश तीनों भाषाओं में आपकी करीब ३० रचनाएँ मिलती हैं।

अभी आप सौधर्म देवलोक में हैं, वहाँ से महा विदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध मुक्त हो जायेंगे, अर्थात् एक भवतारी हैं।

अजमेर में आपकी मुख्य दादावाड़ी है। वैसे हजारों ही स्थानों पर आपकी मूर्तियाँ एवं चरण-पादुकाएँ स्थापित हैं। विशेष जानने के लिए हमारे "युग प्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी" ग्रन्थ के संशोधित संस्करण को पढ़ना चाहिए।

वि० सं० १२११ में आपका स्वर्गवास हुआ

उसके ८४ वर्ष बाद ही सं० १२९५ में आपके रचित "गणधर सार्द्ध शतक" ग्रन्थ की बृहद्वृत्ति सुमतिगणि ने बनाई है। जिनमें आपकी यशोगाथा, जीवनी, गुरु परम्परा एक वृद्ध पूर्णचन्द्र मणि आदि से ज्ञात करके दी गई है। अतः उसकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है। इसके बाद जिनपति सूरिजी के अन्य विद्वान शिष्य जिनपाल उपाध्याय ने युगप्रधानाचार्य गुर्वावली में आपकी जीवनी दी है। इन प्राचीन ग्रन्थों में आपका जन्म स्थान धवलक धोलका बतलाया गया है। इस सम्बन्ध में मेरा लेख "श्रमणभारती" में प्रकाशित हो ही चुका है। हर्ष का विषय है कि अब धोलका में भूमि खरीद कर आपका स्मारक बन रहा है।

दादा श्री जिनदत्तसूरिजी का जन्म हुए ९०० वर्ष वि० सं० २०३१ में बीत चुके हैं। अतः उनकी ९वीं जन्म शताब्दी जिसकी चर्चा कई वर्षों से चल रही है। वह धोलका के श्री जिनदत्तसूरिजी स्मारक तैयार होने पर समारोह पूर्वक मनाई जावे। उस समय तक उनके रचित समस्त ग्रन्थों का संग्रह हिन्दी अनुवाद के साथ श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ और अ० भा० जैन खरतरगच्छ संघ को प्रकाशन कर देना चाहिए। उनके छपने में भी समय लगेगा और कुछ रचनाओं का तो हिन्दी अनुवाद अभी तक नहीं हुआ है। अतः इन ग्रन्थों की तैयारी शीघ्र ही प्रारम्भ होना जरूरी है।

जिनशासन के शक्तिदाता—जिनदत्तसूरिजी

—ले० गणाधीशजी श्री उदयसागरजी महाराज

जीवन में आमूल चूल परिवर्तन दाता श्री जिनदत्तसूरीश्वरजी महाराजसाहब ने जब शासन के आराधक कम होने लगे उस समय एक लाख तीस हजार अजैन महानुभावों को सही मार्ग-दर्शन देकर सत्तावन गोत्र की स्थापना कर, नाहर, सांढ, चंडालिया, धूपिया, पारख, लोढा कांकरियादि को एक ही थाली में जीमने योग्य योग्यता (वक्षी) प्रदान की।

उनका यह अपरम्पार उपकार याद करके उनके बताये मार्ग में हमसे जो भी भूलें हो गई हों तो उसे हटाने के लिये आज का दिन पवित्र संकल्प लेने के लिए शुभ है। जीवन की अशुद्धि से बचाकर हमें शुद्ध बनने में सात शुभ संदेश अनिवार्य हैं उनका निरीक्षण करें—

१—जुआ या सट्टा मत खेलो।

२—मांस मनुष्य कोई खुराक नहीं है। (हमारे नख, पसीना, जीभ, दांतादि मांसाहारी प्राणी से नहीं मिलते) अतः नहीं खाना है।

३—सुरा (शराब) नशीली वस्तु दवा हो सकती है। अतः नशे के लिए मत पीओ (हजरत मुहम्मद ने तो यहाँ तक कहा कि—"शराब का कतरा यदि जिस्म पर गिर जाय तो चमड़ी को काट दो।"

४—वेश्या गमन—वीर्यपात का साधन मत बनाओ। (गुजराती कहावत) वेश्या भुवन कचेरी प्रवेशी त्यां अक्कल बधे विशेषो।

५—शिकार—किसी जीव के आत्म विकास को रोक कर जीवन से हटाना नहीं, अभयदानदाता बनो।

६—चोरी—कोई भी वस्तु मालिक की आज्ञा बिना। जो कार्य में या अपने अधिकार में लेवे तो पाप है। अतः मत लो।

७—पर-स्त्री-गमन—अपने से जिसका विवाह नहीं हुआ हो वैसी महिला के साथ एकान्त सेवन, हँसी, या मजाक, करना, सोना-बैठना, देखने वालों को कर्मबन्ध का कारण है। अतः उनसे बचना चाहिए और पर-स्त्री का परिचय न करें।

ऊपर लिखे सात संदेश जीवन में धारण करा कर हमें आदर्श नागरिक बनाकर महाजन-पद से विभूषित किया और भगवान महावीर के धर्म का मर्म समझाकर श्रावक की योग्यता की प्रतिष्ठा के रक्षक बनाये।